संस्थापक - योगीराज परम पूज्य श्री मोहनीशजी महाराज

सेतुयोग

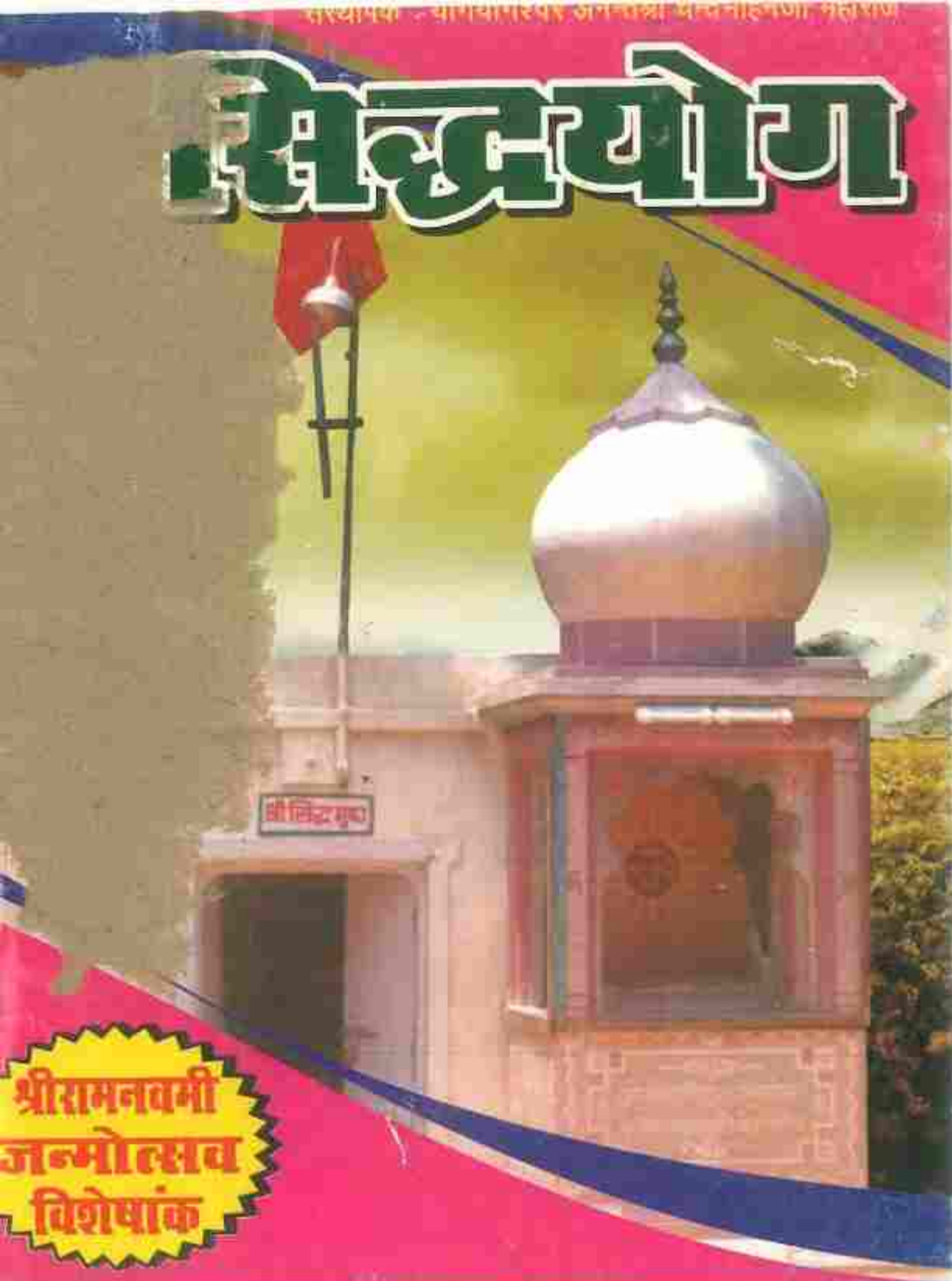

श्रीरामनवमी
जन्मोत्सव
विशेषांक

वर्ष : 46 अंक : 1 अप्रैल-2013

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 46 अप्रैल - 2013 अंक : 1

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे,
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम।। (यजुर्वेद)

जो स्वयं प्रकाश स्वरूप है और जो प्रकार्य चन्द्र आदि पदार्थों को उत्पन्न करके, इनको धारण किये हुए है, जो सम्पूर्ण जगत का स्वामी है चेतन स्वरूप है, जो इस जगत से पहले भी था और पृथिवी भूमण्डल आदि समस्त ब्रह्माण्ड का आधार है उस सुख स्वरूप परमात्मा की अति प्रेम के साथ हम विशेष भक्ति किया करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	योग में वैराग्य का महत्व – डॉ. जे. पी. शर्मा	12
4.	यौगिक प्रश्नोत्तरी	20
5.	हमारे अन्तराल में छिपी दो दिव्य विभूतियाँ – पूजा पाण्डेय	24
6.	आलौकिक कृपा की विलक्षण घटना	27
7.	योगआसन – भूसम्प्रसारणासन	35
8.	योग–अमूल्य निधि एवं दिव्य धारणा – द्वारका प्रसाद शर्मा	36
9.	धारणा–ध्यान–समाधि.... – डॉ. राजकुमारी त्रिखा	43
10.	अष्टांग योग साधना (अन्तरंग) – प्रो. ऋषिराम शर्मा	47
11.	लल्ला! कुम्भ में अवश्य इलाहाबाद आना – प्रेम बिहारी त्रिपाठी	
12.	श्री भाई खुशीराम – श्री योगी सूरज प्रसाद शर्मा	
13.	योग को अपनाओगे, सच्चा आनन्द पाओगे – रामेश्वर	63
14.	श्रद्धांजली, आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा – अवनीश भटनागर	68
15.	महाकुम्भ 2013 का पर्व सम्पन्न	68
16.	योगी श्री कृष्णानन्द जी	69
17.	देह और देही – परमहंस स्वामी योगानन्द	73
18.	लोक गीत – भूपेन्द्र 'अंकुर'	75
19.	कृष्णस्तु लीलामय:	76

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 150.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय संस्करण)	: रु. 900.00

• विशेष लेख

मेरे श्री गुरुदेव

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तकवह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता, इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने-अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम पुनीत सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या है और उनका स्वरूप क्या है? यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं, एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्वाचित स्वरूप। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद्भगवद्गीता के 17 वें अध्याय में कहा है :-

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्द घन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।" इसके

अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ, सिद्धों के महा सिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वतः परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो-जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे-से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य विद्वान् महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल-क्रीड़ा करते हुए घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। उसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जहाँ-जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्‌गद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता-पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर-कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक-लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन-यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्‌गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झारखण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाई। एक नर-भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर-भक्षक है, मनुष्य

को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6–6 मील 7–7 मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है – 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तुछिन्नसंशयाः।' अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्" की शक्ति रखता है। मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जाग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया –

प्रज्ञाप्रासादमारुहय अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुए योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनी–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये –

(1) योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति। इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी; निज निर्मित साधनों का प्रचार। उनमें उनका एक प्रमुख साधन था; 'जीवन तत्व साधन' इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़िया को हर समय भूख लगती रहती है,

उसी प्रकार इन साधनों के करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। वह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता बनकर स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का अध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

'जीवन तत्व साधन' को हमने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दिया है। इसका सभी को अवलोकन करना चाहिए। इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए :–

1: सर्वोत्तान – केवल तीन बार समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।

2: स्कन्ध चालन – समय पन्द्रह मिनट।

3: पादचालन – आठ मिनट।

4: नाभिचालन – पन्द्रह मिनट।

5: जानुप्रसार – दोनों ओर से तीन बार समय लगभग चार मिनट।

6: बालमचलन – केवल एक मिनट।

7: बच्चे का ध्यान – पाँच मिनट।

8: नाड़ी संचालन – पन्द्रह मिनट।

9: उत्क्षेपण – केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी हैं तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक के लिए परम श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(2) **अमर तत्व साधन** – जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और

हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन ही लोक–हितार्थ कराया करते थे; किंतु कुछ समय बाद नेती, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा काम उन्होंने संसार में आकर किया।

(3) **शक्तिपात दीक्षा** – जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है, सिद्धयोग और साधन योग। साधन योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति संचार भी कर सकते हैं। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन–घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सबकी तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्ति पात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा–फल को प्राप्त कर कितने ही सैंकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक–लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग–मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग–मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क

वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधू हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किंतु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते–करते ही श्री गुरुदेव जी वहीं अन्तर्धान हो गये। वह लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ–धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं हैं किन्तु कोई सामर्थ्य वान् परम योगिराज हैं। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15–16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्करा कर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा, ब्रह्मचारी जी! हमारे एक भाई साधू रूप में अभी–अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चात्ताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हैं। इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, किन्तु इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने–अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिए वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिए पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभु जी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी प्रख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी! आप

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

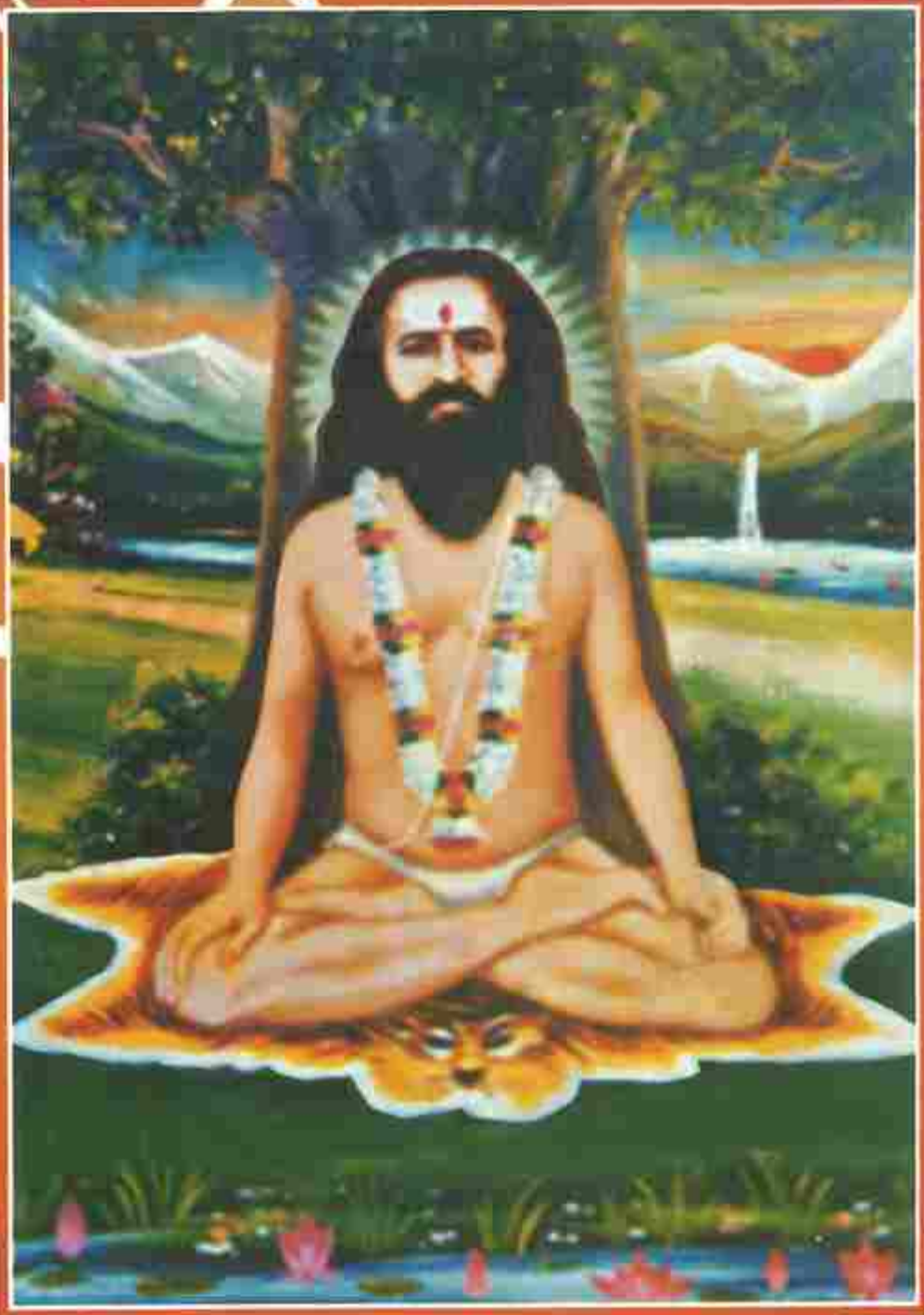

श्री श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

बड़े-बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं? वह तीन दिन से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिए आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जावेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज हैं। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे-से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्प पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण-कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा - बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश-गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभो! हे सर्वशान्तिमान्! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्द्रष्टा श्री प्रभुजी! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ-कुछ समझने लगे। यहाँ से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस बीच में क्या-क्या कार्य किया, वह शनैः-शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा जिससे पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

●●●

परम गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

ईश्वर की भांति महायोगियों का जन्म और कर्म भी दिव्य होता है। इस दिव्यता का ज्ञान जिसको हो जाता है वह भी दिव्य हो जाता है। योग अमृत व अमर विद्या है इस विद्या के जान लेने पर मनुष्य जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। त्रिविध ताप से मनुष्य को मुक्त करने के लिए समय–समय पर ईश्वर का योगियों के रूप में अवतरण होता रहता है। ऐसे ही महायोगियों में सृष्टि के आदि से अन्त तक हिमालय में अजर अमर रहकर वास करने वाले दिव्य महापुरुष योग विधि से निर्माण काय करके पृथ्वी पर आये हैं जिनका परम पावन नाम प्रभु रामलाल जी है। वे एक ही समय में अनेक शरीर धारण कर (काय निर्माण) योग विद्या के प्रचार–प्रसार करने के लिए प्रकट होते रहते हैं। आप अपने भक्तों में भगवान् महादेव के रूप में सर्वत्र पूजित हैं।

आपका अवतरण पंजाब के अमृतसर नगर में स्वनाम धन्य ज्योतिर्विद् पं. गण्डाराम जी के पवित्र घर में हुआ। श्रीमाता जी का नाम भागवन्ती देवी हुआ। पिताश्री को आप की जन्म कुण्डली को देखकर ही आप के महायोगी होने का ज्ञान हो गया था। आपके पूर्वज भी बहुत शक्ति सम्पन्न महापुरुष हो चुके है जो अपने संकल्पमात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से अग्नि प्रज्वलित कर देना, वर्षा करा देना आदि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। इसी दिव्य कुल में आप का अवतरण हुआ है। नित्य ही अपने शाश्वत स्वरूप में अवस्थित रहने वाले ये महायोगी दयार्द्र होकर सद्गुरु के रूप में आकर योग विद्या का दान देते हैं। शैशवावस्था में ही आपके कार्य अलौकिक थे, चमत्कारिक थे। चौदह वर्ष की अल्पायु में ही विद्याध्ययन के बहाने से घर से निकल पड़े थे और सर्वप्रथम कुरुक्षेत्र पहुँचे। वहाँ सभी लोगों ने आपके कई चमत्कार देखे। फलित ज्योतिष का ज्ञान अद्भुत था। गुरुजन भी आपकी अप्रतिमप्रतिभा से आश्चर्य चकित थे और आप को महान योगी के रूप में देखते थे। यहाँ से आप श्री काशी जी आ गये। वहाँ भी धार्मिक समाज में भ्रष्टाचार तथा कुरीतियाँ फैली हुई थीं उन कुरीतियों का अपनी योग शक्ति से दमन किया। तान्त्रिक, मान्त्रिक आपके सामने नतमस्तक हुए। कुछ वर्ष वहाँ रहने के बाद आप श्री वृन्दावन धाम पहुँचे। वहाँ भगवान् की दिव्य लीला स्थली के दर्शन किये। तत्पश्चात् आगरा जिले में बरहन गाँव में पहुँच गये। वहाँ पर एक भक्त ठाकुर दास के यहाँ कुछ दिन रहे। वहाँ पर आपकी अलौकिक कृपा लोगों पर बरसने लगी। जो मुख से निकल जाता वही बात पूरी होती। लोगों को मुँह माँगा वरदान मिला। आपके दिव्य सानिध्य को पाकर सभी कृतकृत्य हुये। यहाँ से आगे आप सवाई आश्रम आये, यहाँ प्यारे लाल आदि आपके भक्त बन गये। यहाँ पर आपकी कृपा वर्षा होने लगी। भक्तों ने आपके लिये एक गुफा का निर्माण कर दिया। आपको अपने गुरुदेव का नेपाल में जाकर दर्शन करना था। अतः आप बन्द गुफा से सूक्ष्म रूप में निकल कर आकाश मार्ग से नेपाल की ओर चल पड़े। गाँव के

एक किसान ने आपको उड़ते देखा तो भययुक्त होने लगा। श्री प्रभुजी ने ऊपर से ही नाम लेकर उसे आशीर्वाद दिया और अपने नेपाल गमन की बात बताते हुए आगे निकल गये। नेपाल में अपने गुरुदेव सदाशिव के पास कई वर्ष रहे। फिर उनकी आज्ञा से आप पुनः भूमण्डल पर आ गये और संस्कारी बच्चों को ध्यानयोग के दिव्य ज्ञान का उपदेश किया। आपने देखा कि कलयुग के ये प्राणी क्षीणवीर्य एवं अल्प वीर्य होते जा रहे हैं। इसलिए आपने अपने मन से जीवन तत्व साधन, अमर तत्व साधन एवं फलतत्व आदि अनेक अद्‌भुत साधनों का आविष्कार किया। इन साधनों को करने से साधकों की जठराग्नि प्रदीप्ति होती है, शरीर में रसरक्त का नवनिर्माण होता है फलतः कायाकल्प हो जाता है इसी से कुण्डलिनी जागरण की स्थिति भी आ जाती है। मानव मात्र के लिए ये क्रियायें उपयोगी हैं। नेति आदि षटकर्मों का अभ्यास आश्रमों में कराया जाने लगा। इन क्रियायों का निःशुल्क प्रशिक्षण देकर साधकों को स्वस्थ जीवन प्रदान किया। आपके कई शक्ति सम्पन्न विरक्त योगी हुए। जिन्होंने बाद में योग का बहुत प्रचार किया।

योग विद्या आत्मशक्ति अर्जन का मुख्य उपाय है। योग ही मनुष्य के तन–मन को पवित्र करने वाली विद्या है। अनादि काल से ऋषियों ने इस विद्या को आत्मसात किया और परम पद के अधिकारी बने। सिद्धयोग की प्राचीन परम्परा को आपने पुनर्जीवित किया है। आपके प्रमुख शिष्यों में योगीराज मुलखराज जी, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी, योगीराज चन्द्रमोहन जी, योगीराज नृसिंह मूर्ति जी तथा माता द्रोपदी देवी जी एवं ऋषि देवी जी उल्लेखनीय हैं। श्री प्रभु जी के इन महान शिष्यों ने योग विद्या का बहुत प्रचार किया और योग के अन्तरंग गूढ़ रहस्यों का ज्ञान अपने अधिकारी शिष्यों को दिया। योग से कितनी बड़ी–बड़ी शक्तियां इस कलिकाल में भी प्राप्त हो सकती हैं। इस बात को सभी को दिखा दिया। श्री प्रभु जी के शिष्य प्रशिष्यों के देश–विदेश आश्रम तथा योग केन्द्र खुले हुए हैं। योगीराज गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज श्री प्रभु जी के योग्यतम शिष्यों में एक हुए हैं। जिन्होंने अपने शिष्यों को ध्यान योग व राजयोग के अनुपम मार्ग का पथिक बना दिया है। अन्तरानुभूतियों के द्वारा वे योग के यथार्थ स्वरूप को जानने लगे। गुरुगीता में गुरुदेव का जो स्वरूप दर्शाया हुआ है श्री प्रभु जी का वही स्वरूप है। उनके अनुयायी उनके दिव्य ज्ञान से स्वयं भी परिपूरित हो रहे हैं तथा इस ज्ञान से और को भी आलोकित कर रहे हैं। जैसे एक ज्योति से अनन्त ज्योतियाँ जलती हैं, ऐसे ही योग की ज्योति हर घर में प्रकाशित हो रही है। गुरुदेव अपने शिष्यों के हृदयस्थ अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले होते हैं। श्री प्रभु जी अपने बच्चे के अज्ञानतिमिर का नाश करते हैं और आत्मज्ञान प्रदान करते हैं। सद्‌गुरु के इस उपकार के कारण ही गुरुगीता में आया है। ***यावत् कल्पान्तको देहः तावत् देवि गुरुं स्मरेत।।*** अर्थात् जब तक शिष्य का शरीर विद्यमान है तब तक उसे श्री गुरुदेव का स्मरण करते रहना चाहिए।

परम गुरुदेव आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का शुभ 125 वाँ प्राकट्य दिवस उनके सब दिशाओं में फैले हुए शिष्यों के द्वारा धूम धाम से मनाया जा रहा है। श्री सिद्ध गुफा सवांई धाम में यह उत्सव 17,18 व 19 अप्रैल 2013 को बड़े ही धूमधाम से मनाया जा रहा है। उनके इस पावन प्राकट्य पर्व पर सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

● ● ●

योग में वैराग्य का महत्व

– डॉ. जे. पी. शर्मा, गुरु आशीष सदन, पौंटा साहिब (हि.प्र.)

पतंजलि योग दर्शन (2/25) में कहा गया है –

'दृष्टानुश्रविक विषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्।''

अर्थात् देखे और सुने हुये विषयों में सर्वथा तृष्णा रहित चित्त की, जो वशीकार नामक अवस्था है, वह वैराग्य है।

अत: प्राणी जब विषय भोगों का अपने अन्त:करण की गहराइयों से कामनाओं का सम्पूर्ण त्याग कर देता है, वही वैराग्य है। मन के दो रूप हुआ करते हैं। एक मन जिसे बाह्यमन कहते हैं, यह निश्चित ही धोखेबाजी करता है। बड़ा ठग है, केवल त्याग का दिखावा करता है, परन्तु जैसे ही कोई विषयी दृष्य सामने आ गया, यह अपने हथियार डाल बैठता है तथा अपने आपको समझाता है, इसका उपभोग कर लो, आगे से ऐसा नहीं करेंगे तथा भोग, भोग बैठता है। सोचा करता है, मुझे कौन देख रहा है? दूसरा मन, अन्त: मन कहलाता है जो देव रूप होता है। आपका सच्चा हित चाहने वाला, सदैव सत्य बोलता है। यह पल–पल जागरूक रहा करता है तथा समय–समय पर हमें सचेत करता रहता है। प्राणी जब अन्त: मन की अवहेलना या अनदेखी करता है तभी पाप कर्म हो जाया करते हैं। हमारे जीवन में तृष्णा तथा राग का बड़ा ही महत्व है। लोग कहते हैं तृष्णा मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ती है। राग, तृष्णाओं का साथी बन जाता है। राग का मतलब, स्नेह, ममता से है। राग का अभाव ही वैराग्य की तरफ ले जाता है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता (4/10) में कहा है–

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिता:।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागता:।।

अर्थात् जिनके राग, भय तथा क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे और जो मुझ में अनन्य प्रेम से स्थिर थे, ऐसे आश्रित रहने वाले भक्त ज्ञानरूप से पवित्र होकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं।

हर जीव सुख की कामना करता है तथा दु:ख कोई नहीं चाहता। सच्चा सुख वही है जिससे कभी कष्ट न हो, किसी वस्तु का अभाव न हो, तथा जो हमेशा बना रहे तथा अनन्त बना रहे। परन्तु ऐसा सुख इस जगत में कहीं भी नहीं है। संसार की हर भौतिक वस्तु नाशवान है, जिसका विनाश लगातार हो रहा है क्योंकि प्रकृति स्वयं परिवर्तनशील है। अत: जो स्वयं नाशवान है, उससे भला क्या सुख मिलेगा। इस ब्रह्मलोक में सर्वत्र दु:ख भरा पड़ा है। गीता (5/22) में भगवान ने कहा है –

इन्द्रिय विषयन्ह करि संयोगा, प्रगटैं दुख कारन जग भोगा।
आदि अन्तयुत सो थिर नाहीं, रमैं न बुद्धिमान तेहि माहीं।।

अर्थात् जो भोग, इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होते हैं, यद्यपि प्राणी को उनमें सुख की अनुभूति होती है, परन्तु वास्तव में वे दुःख देने वाले होते हैं तथा आदि, अन्त वाले हैं अर्थात् अनित्य है। इसलिये हे, अर्जुन! बुद्धिमान विवेकीजन उनमें नहीं रमता।

मानव शरीर पंचमहाभूतों से मिलकर बना है। शरीर में अस्थि, माँस, रक्त की प्रधानता पायी जाती है। श्रीमद्भगवदगीता मा. (4/79) में कहा गया है –

देहेऽस्थिमांसरूधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं,
जायासुतादिषु सदा ममतां विमुन्च।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं,
वैराग्य रागरसिको भव भक्तिनिष्ठः।।

अर्थात् यह शरीर हड्डी, माँस, खून का बना पिण्ड है। इसे अपना अर्थात् 'मैं' मानना त्याग दें। पत्नी–पुत्रादि को अपना न माने तथा इस असार संसार को भी क्षणभंगुर समझ लें। किसी भी भौतिक वस्तु को स्थाई समझकर उनमें 'राग' न करें। केवलमात्र भगवान की भक्ति में तन्मयता से लग जायें।

मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म भगवान की भक्ति तथा परोपकार ही है। अतः जब तक मनुष्य ईश्वर भक्ति, उसके गुणानुवाद तथा मानव कल्याण की तरफ अग्रसर नहीं होगा, तब तक वैराग्यता नहीं आ सकेगी। वैराग्यता का हथियार प्रबल इच्छाशक्ति का होना है। वैराग्य के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए, योग दर्शन (1/16) में महर्षि पतंजलि जी ने कहा है –

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्।।

अर्थात् पुरुष के ज्ञान से जो प्रकृति के गुणों में तृष्णा का सर्वथा अभाव हो जाना है, वह परवैराग्य है।

साधक के चित्त से जब विषयी कामनाओं का समान भाव से अभाव हो जाता है तथा अपने ध्येय में एकाग्र हो जाता है। तत्पश्चात समाधि लाभ की परिपक्वता पर पहुंचकर प्रकृति और पुरुष विषयक विवेक ज्ञान प्रगट हो जाता है। उसके होने से साधक की तीनों गुणों में तथा उनके कार्यों में किसी भी प्रकार लेशमात्र भी तृष्णा नहीं रहती है। अतः साधक आप्त काम निष्काम हो जाता है, ऐसी अवस्था का नाम ही परवैराग्य है।

विवेक पुरुष के लिए सभी प्रकार भोग दुःख स्वरूप ही कहे गये हैं–

परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःख मेव सर्व विवेकिनः।।
(योगदर्शन 2/15)

अर्थात् परिणाम दुःख, तापदुःख, संस्कारदुःख – ये तीनों प्रकार के दुःख सब में होने के फलस्वरूप, सात्विक, राजस तथा तामस– इन तीनों गुणों की वृत्तियों में विरोध होने से विवेकशील पुरुष के लिए सभी भोगस्वरूप ही हैं। नचिकेता ने भी अनुभव अनुभव बताया है –

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्त कैत
त्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव,
तवैव वाहास्तव नृत्यमीते।।

(कठोपनिषद् 1/1/26)

यमराज! मनुष्यों के सारे भोग कल रहेंगे या नहीं – इस प्रकार के सन्देहमयी हैं तथा सारी इन्द्रियों की शक्तियों को क्षीण करने वाले हैं तथा जीवन भी बहुत थोड़ा है। अतः ये वाहन, नृत्य एवं गीत आप अपने पास ही रखें, मुझे इनकी आवश्यकता नहीं हैं।

प्रायः अनुभव में आता है कि संसार की प्रत्येक वस्तु हमारा त्याग कर रही है। हमसे क्षण–प्रतिक्षण दूर होती जा रही है। चाहे उसके लिए मानव कितने ही प्रयत्न करले कोई भी सांसारिक वस्तु सदैव हम अपने पास नहीं रख सकते। सदैव परिस्थितियाँ भी एक सी नहीं बनी रहतीं–

'छिन छिन छोड़या जात है तासों किसो सनेह।'

अर्थात् जो पदार्थ हमें छोड़ रहे हैं, उनमें प्रेम करने से क्या मिलेगा? जो वस्तु छूट जाय, उससे पहले ही उसे मानव को त्याग देना चाहिए –

अन्त ही देखा बिगड़ती तो पहले ही बैठा रूठ।

शास्त्र भी यही शिक्षा देते हैं –

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः,
स्वयंत्यक्तास्त्वेते शमसुखमनन्तं विदधति।।

अर्थात विषय भोग तो बहुत लम्बे समय बाद भी चले जायेंगे, हमेशा साथ नहीं बने रहेंगे। अतः क्यों न इन्हें हम स्वेच्छा से ही छोड़ दें? वियोग तो दोनों ही परिस्थितियों में होगा। भोग कामनायें जब हमारा त्याग करती हैं, तब हमें बड़ा दुःख होता है, परन्तु जब हम इन भोगों को स्वेच्छा से छोड़ते हैं, तब हमें अपार सुख का आनन्द प्राप्त होता है तथा इच्छा शक्ति बलवती होती है। रामभक्त तुलसीदास ने कहा है –

अन्तहुँ तोहि तजैंगे पामर तू न तजै अब ही ते।।

भगवान की प्राप्ति तथा भक्ति के लिए परमावश्यक तथा महत्वपूर्ण यह है कि प्राणी को वस्तुओं में आसक्ति, कामना, मोह, ममता का त्याग कर देना चाहिए। जब तक ये कामनायें, आसक्ति, ममता, मोह बने रहेंगे तथा उनमें सुख की अनुभूति करते रहेंगे, तब तक हमारा मन तथा चित्त इनसे अलग नहीं हो सकेगा। अतः इन सब को अनित्य, तुक्ष, दुःख स्वरूप समझकर इनका मन से त्याग करें।

सर्प के मुँह में मेंढक, जैसे मच्छरों को पकड़ने का प्रयास करता है, ठीक उसी तरह काल के मुँह में बैठा मानव, संसार के भोग पदार्थों तथा मान–सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए प्रयास करता रहता है ।

यथा व्यालगलस्थोऽपि भेको दंशानपेक्षते।

तथा कालाहिना ग्रस्तो लोको भोगानशाश्वतान।।

सर्वविदित है कि मृत्यु अटल तथा निश्चित है। मत्यु किसी भी क्षण हो सकती है। यह भी जानते हैं कि संसार की कोई चीज हमारे साथ नहीं जायेगी और हम लाख प्रयत्न करें तब भी हम अपने साथ कुछ भी नहीं ले जा सकते। अतः अगर हम इस सत्य को मन की अंतः गहराइयों में उतार लें, तो वैराग्यता प्राप्त करना कुछ भी कठिन नहीं है। सच ही कहा गया है –

मुट्ठी बांध कर आया रे बन्दे, हाथ पसारे जायेगा।

धन–दौलत और माल खजाना, यहीं पड़ा रह जायेगा।।

जो पल निकल रहा है, उसके लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। मृत्यु का क्या भरोसा, कब आ जाय? मृत्यु सदैव अचानक ही आती है –

मारहि काल अचान चपेट की, होहिं धरिक में राख की ढेरी।

योगेश्वर भगवान श्री कृष्णचन्द ने (गीता 12/7) मृत्यु को मृत्युसागर कहके पुकारा है –

मो महँ मन राखें सतत जे मय भगत उदार।

मृत्युरूप भवसिंधु तेहिं, करिहौं मैं उद्धार।।

जैसे समुद्र में जल ही जल है, वैसे ही इस संसार में केवल मृत्यु ही मृत्यु है, अन्य कुछ भी नहीं है। प्रतिपल लाखों प्राणी काल के मुँह में जा रहे हैं। ऐसे संसार में हम कैसे मोह करें जिसका अन्त मृत्यु ही है। भगवान की भक्ति को छोड़ कर मानव क्यों विषय भोगों की कामना करे। प्राणी, पाप, अनीति, अत्याचार, कपट, झूठे, धोखे का सहारा लेकर धन–सम्पत्ति जमा करने में लगा हुआ है, आखिर ये किसके काम में आयेगी। प्राणी के खाने, पीने का प्रबन्ध तो जन्म से पूर्व ही परमात्मा कर देते हैं, फिर इतना मारा–मारी क्यों? इस पर भी मानव को सोचने की आवश्यकता है। यह संसार तो श्मशान के समान है जो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता है, फिर

इससे हमारा मोह नहीं छूटता, कितने आश्चर्य की बात है।

जैसे टूटे घड़े से निरंतर पानी गिरता रहता है, उसी तरह आयु भी प्रतिदिन धीरे-धीरे घटती जाती है, तथा प्राणी निरंतर मृत्यु की तरफ बढ़ता जाता है।

आयुः स्त्रवति भिन्नघटादिवाम्बु।

जीवन के समापन का समय करीब आ रहा है फिर प्राणी अचेत ही रहता है। इतने अमूल्य जीवन को भगवान की भक्ति में न लगाने के बजाय भोगों में लगा दिया। यह तो अपने आप को धोखा देना ही हुआ। इसका दण्ड तो मिलेगा। जीवन में मन का आकर्षण कैसे मिटाया जाय, यही प्राणी मात्र सोचा करता है, अतः सद्विचारों तथा दृढ़ इच्छा शक्ति से ही मन को आकर्षणों से हटाया जा सकता है।

संसारदीर्घरोगस्य सुविचारः महौषधः।
कोऽहं कस्य च संसारः विचारेण विलीयते।।

संसार के सारे पदार्थ देश, काल एवं वस्तु से अल्प हैं। अल्पता में सुख नहीं होता। "नाल्पे सुखमस्ति।।" विचार करने पर सारा संसार स्वप्न तुल्य दिखाई देता है।

सपने होई भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ।।

(रा. च. मा. 2/92)

अर्थात् जैसे गरीब मनुष्य स्वप्नावस्था में राजा बन जाता है, परन्तु जागने पर फिर भिखारी ही बना रहता है ठीक उसी प्रकार जागृत अवस्था का जीवन रूपी स्वप्न संसार, आँखें बन्द होते ही (मृत्यु होने पर) सब कुछ समाप्त हो जायेगा।

'सम्मीलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति।।' निद्रावस्था के सपने एवं जाग्रत अवस्था के सपने में पदार्थ, परिस्थितियां सत्य ही लगा करती हैं, किन्तु सपने के समय बाद उनकी प्राप्ति नहीं हो पाती अर्थात् सपना टूटने पर कुछ भी तो हाथ नहीं लगता। भगवान ने (गीता, 2/16) में कहा है –

असत वस्तु अस्तित्व न कोई, सत का कबहु अभाव न होई।
एहि विधि असत औरूसत अर्जुन, दौनुहुँ लखे तत्वज्ञानी जन।।

अर्थात् असत की सत्ता नहीं है तथा सत वस्तु का अभाव नहीं है। जो वस्तु पहले भी नहीं थी और बाद में भी नहीं रहेगी, वह वर्तमान में भी नहीं है, यह सिद्धान्त है –

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।।

इस दृष्टि से वर्तमान में यह संसार दिखने पर भी यथार्थतः है ही नहीं। अतः जो वस्तु है, ही नहीं, वह असत है। उसमें आकर्षण भी नहीं हो सकता। गहराई से विचार करने पर ही संसार

की असारता समझ में आ सकेगी। अपने सांसारिक कर्तव्य कर्मों को नहीं छोड़ना चाहिए। छोड़ने लायक, आसक्ति, कामना, मोह–ममता तथा राग हैं, कर्तव्य कर्म कदापि नहीं।

प्राणी प्राय: पाप कर्म तीन प्रकार से करता है। 'मनसा, वाचा, कर्मणा' अर्थात् मन के द्वारा पाप कर्म किये जाते हैं। बेशक मुँह बन्द है कुछ कर भी नहीं रहे हैं, परन्तु मन में कुविचार उत्पन्न हो रहे हैं, मन में अनेकों बुरे भाव पैदा हो रहे होते हैं, ये विचार किसी भी तरह के हो सकते हैं। अत: मन के द्वारा कुत्सित कर्म ही पाप बनते हैं। दूसरे पाप कर्म, वाणी से होते हैं। बेशक कुछ भी नहीं करना चाहते, परन्तु वाणी से अनाप–सनाप बोलते जा रहे हैं, जो किसी भी प्रकार सुखद् नहीं है जिनका परिणाम दु:खदायी ही होता है, ऐसे कर्म, वाणी (जिव्हा) द्वारा होते रहते हैं। इसीलिए कहा गया –

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुँ शीतल होय।।

तीसरे तरह के पाप, शरीर द्वारा किये हैं। किसी की हत्या करना, मारना, पीटना, आग लगाना इत्यादि। अत: हाथ, पैरों तथा कर्मेन्द्रियों की क्रियाओं से जो पाप किये जाते हैं, उन्हें शरीर से होने वाले पाप कहते हैं जिनके करने से दु:खों की अनुभूति होती हो। परन्तु पति–पत्नि के शारीरिक कर्म, पाप कर्म की श्रेणी में कदापि नहीं आते। अत: प्राणी, अपने मन, वाणी तथा शरीर पर नियंत्रण कर ले, तो भी धीरे–धीरे वैराग्यता की तरफ बढ़ने लगता है।

प्राय: संसार में तीन बड़े प्रबल आकर्षण कहे जाते हैं – धन, स्त्री तथा प्रतिष्ठा। धन से स्त्री, और स्त्री से मान–सम्मान, प्रतिष्ठा में आकर्षण शक्ति अधिक है। देखा गया है कि धन तथा स्त्री के त्यागने पर भी मान बड़ाई–प्रतिष्ठा के मोह में फंसने की पूरी–पूरी संभावना बनी रहती है। यह एक ऐसा समाज का कोढ़ का रोग है जो काफी हद तक साधकों का पीछा नहीं छोड़ता। गृहस्थ की तो बात ही क्या बड़े–बड़े मठाधीश, धर्माचार्य भी इस रोग के लपेटे में आ जाते हैं। नारी के आकर्षण ने किसको छोड़ा है। नारद जी जैसे ज्ञानी भी इसकी माया से नहीं बच पाये। नारी के आकर्षण की बदौलत ही श्री हरि से सौन्दर्यता मांगने चले थे। उन्हीं के शापवश, जय–विजय को असुर कुल में जन्मना पड़ा, उन्हीं के शाप के फलस्वरूप भगवान विष्णु जी को 'रामावतार' धारण करना पड़ा, इत्यादि।

प्राणी मात्र का शरीर मल मूत्र का भंडार है अर्थात् इस शरीर में मल–मूत्र भरा पड़ा है। मल–मूत्र वाला क्या पात्र कभी सुन्दर तथा पवित्र हो सकता है? अत: ऐसे शरीर से मोह, ममता तथा प्रेम कैसा? प्राण निकलने पर शरीर शव बन जाता है, जिसका अन्तिम सत्य 'मुट्ठी भर राख' है। शरीर की सुन्दरता से मोह क्यों?

अमेध्यपूर्णे कृमिजालसंकुले
स्वभावदुर्गन्धिविनिन्दितान्तरे।

कलेवरे मूत्रपुरीष भाविते,

रमन्ति मूढ़ा विरमन्ति पण्डिता:।।

साधक के लिए यह बात महत्वपूर्ण है कि वह पहले देखे, सुने हुए स्त्री, धन आदि पदार्थों का भी चिन्तन न करे। उन्हें असत् अर्थात् सत्ताहीन समझकर त्याग दे–

दृष्टं श्रुतमसद्बुद्ध्वा नानुध्यायेत् न संविशेत्।

विषयों का चिन्तन करने से मन विषयी बनता है, भगवान का चिन्तन करने से मन भगवान में लीन हो जाता है –

विषयान् ध्यायतश्चितं विषयेषु विषज्जते।

मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते।।

देवर्षि नारद ने भी कहा है कि प्रेम भक्ति की प्राप्ति की इच्छा वाले साधकों को स्त्री, धन, नास्तिक एवं शत्रु का चरित्र नहीं सुनना चाहिए।

स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रं न श्रवणीयम्।।

भगवान के भजन में लगे साधकों के लिए विषयी पुरुषों एवं स्त्री का दर्शन जहर खाने से भी अधिक अमंगलकारी बताया गया है –

निष्किन्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य,

पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।

संदर्शन विषयिणामथ योषितान्च

हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु।।

न तथास्य भवेत क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसङ्गत:।

योषित्सङ्गाद् यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गत:।।

(श्रीमद्. 11/14/30)

स्त्रियों के संग से और स्त्री प्रेमियों – लम्पटों के संग से पुरुष को जैसे क्लेश और बन्धन में पड़ना पड़ता है, वैसे क्लेश और फंसावट और किसी के भी संग से नहीं होती।

आकर्षण भोगों से भरा हुआ है, अत: यह सारा संसार सुन्दर तथा सुखदायी प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में यह काले नाग की भांति है, जो देखने में कोमल है, परन्तु उसका स्पर्श यमलोक तक पहुँचा देता है। यदि यह मन भगवान में फंसा हुआ है, तो सौभाग्यशाली है तथा यदि यह मन संसार में फंसा हुआ है, तब तो दु:खों का कोई अन्त नहीं है। संसार में छोटे–बड़े बनने का कोई महत्व नहीं है, न मालूम हम कितनी बार स्वर्ग में इन्द्र बने होंगे तथा कितनी ही बार छोटे–बड़े कीड़े – मकोड़े। अत: भगवान का भजन करने में हमारे जन्म की सार्थक है, शेष

तो सब व्यर्थ है।

अरब खरब लौं द्रव्य है, उदय–अस्त लौं राज।
तुलसी जो निजमरण है, आवे केहि काज।।

सुना जाता है कि हर पुरुष की सफलता में उसकी पत्नि का साथ होता है। गोस्वामी तुलसीदास शायद आज रामचरितमानस के रचयिता न बने होते, अगर उन्हें पत्नी ने न धिक्कारा होता। इसी प्रकार राजा भर्तहरि, राजपाट छोड़कर सन्यासी योगी न बन जाते अगर उनकी रानी का चरित्र सामने न आया होता, जिस रानी को राजा अति प्रेम करते थे। उसी तरह गोपीचन्द, नरसी महता आदि अनेकों नाम है, जिन्होंने सुख सुविधाओं को लात मारकर वैराग्य अपना लिया।

वैराग्य तत्व केवल मात्र भोग्य पदार्थों का त्याग अथवा उनका उपभोग छोड़ने से नहीं है, वरन उन भोग्य पदार्थों का सदुपयोग करके तथा दूसरों या समाज को उनका लाभ देकर होता है। संसार की वस्तुओं में अपना हक जताना कदापि उचित नहीं है। हर सांसारिक वस्तु को ईश्वर का वरदान समझकर उसका सदुपयोग करना ही परमार्थ है, तथा उससे ही वैराग्य भावना जागृत होती है। वास्तव में वैराग्य का रहस्य निष्काम कर्मयोग में ही छिपा हुआ है –

विषयन्ह जो आसक्त न धरही, मनकर निजइन्द्रियन्ह बस करहीं।
कर्मयोग कर्मेन्द्रिय द्वारा, करै सो विज्ञ विसिष्ठ उचारा।।

(गीता, 3/7)

अर्थात् जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।

अत: इस नश्वर संसार का उपदेश है कि वैरागी बनिये। वैरागी का अर्थ है – संसार के पदार्थों की नश्वरता को समझते हुए उनका उपयोग विकास धर्म पूर्ति के लिए परमार्थ में करना। स्वार्थ, लोभ, तृष्णा, मोह को निरन्तर कम करते हुए परमार्थ में संलग्न बने रहें, तभी हमें सच्चा वैराग्य प्राप्त हो सकेगा। वैराग्य से योग प्राप्ति सहज हो जाती है। ध्यान योग में वैराग्यता ही प्रधान है। प्राय: सुनने में आया है कि वैरागी पुरुषों की ध्यान साधना उच्च श्रेणी की होती है। क्योंकि ध्यान के अन्तर्गत मन–चित्त निश्चल बना रहता है।

परम् पूज्य श्री सद्गुरु देव के पावन मंगलमयी चरणों में सादर मेरा कोटि–कोटि साष्टांग प्रणाम व सभी गुरुभाइयों को जय गुरुदेव।

● ● ●

यौगिक प्रश्नोत्तरी

पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी द्वारा

आश्रम का शुद्ध वातावरण है। योग–अभ्यासी लोग उठ चुके हैं। ब्रह्मचारी लोग अपनी–अपनी हठ योग की साधनाओं में नियम पूर्वक लग चुके हैं। आश्रम में ठहरा हुआ गृहस्थ समुदाय भी अपने–अपने नित्य कृत्यों से निपट करके श्री गुरुदेव जी की आज्ञानुसार अपने–अपने आसन, बन्ध मुद्रायें आदि का अभ्यास करके जैसा जिसको आदेश था अपने अपने ध्यानाभ्यास में बैठ गये। थोड़ी देर बाद सभी नैतिक क्रियाओं से निवृत्त हो गये। श्री आनन्दकन्द प्रभुजी की आरती, पूजन, एवं गीता पाठ आदि के बाद नैत्यिक सत्संग का कार्य प्रारम्भ हो गया। उन में से एक जिज्ञासु ने आकर प्रश्न किया –

प्रश्न – हे गुरुदेव! कल के सत्संग में आपने सर्व चित्त वृत्ति निरोध को योग बतलाया था और उसके साथ ही यह भी कहा था कि सूत्र में भगवान पतञ्जलि देव ने "सर्व" शब्द को ग्रहण नहीं किया इसलिए सम्प्रज्ञात समाधि जिसमें बराबर अनुभूतियें रहा करती है यह भी योग ही है। सो आप कृपा करके मुझे सम्प्रज्ञात योग ही समझाइये। वह कितने प्रकार का होता है और साधक निरोध तक कैसे पहुँच पाता है?

उत्तर – 'हे पुत्र! सुनो भगवान पतजलि देव ने सम्प्रज्ञात समाधि का इस प्रकार वर्णन किया है –

वितर्क विचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः।

अर्थात् वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मितानुगत होने से सम्प्रज्ञात योग के चार भेद हैं जिनका वर्णन व्यास देव जी महाराज अपने भाष्य में निम्नांकित पंक्तियों में करते हैं –

वितर्कः = चित्तस्यालम्बने स्थूल आभोगः, सूक्ष्मो = विचारः, आनन्दः = ह्लादः, एकात्मिका संविद = अस्मिता, तत्र प्रथमश्चतुष्टानुगतः समाधि स वितर्कः, द्वितीयो वितर्क विकलः स विचारः, तृतीयो विचार विकलः सानन्दः चतुर्थस्तद्विकलोस्मिता मात्र इति, सर्व एवं सालम्बनाः समाधयः।

इनमें से वितर्कनुगत समाधि उसको कहते हैं जिसमें चित्त को ठहराने के लिए स्थूल विषयों का अवलम्ब लिया जाता है। जैसे अग्नि, जल, वायु, आकाशादि स्थूल महाभूत है और विचारानुगत समाधि में स्थूल महाभूतों से होने वाली सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों से होने वाला साक्षात्कार और आनन्दानुगत समाधि में योगी की आह्लादात्मिक स्थिति और उसके बाद अस्मितानुगत योग में केवल मात्र अस्मि प्रत्यय का आभास होता है। सम्प्रज्ञात समाधि अन्य योगेक भेदों की

स्थिति में योगी को स्वतः ही सिद्ध होती चली जाया करती है। बात तो केवल मात्र एक है मनुष्य को अपने अभ्यास से पीछे नहीं हटना चाहिए इसके बाद 'योगिनो योग एव उपाध्यायः' अर्थात् योगी का योग ही गुरु बन जाया करता है वैसे वह सर्व शक्तिमान आदि गुरु परमात्मा घट-घट वासी अन्तर्यामी एवं प्राणी मात्र का उर प्रेरक है। साधक अपने अभ्यास के द्वारा जिस भूमिका को पार कर जाता है उसके बाद उस परम गुरु परमात्मा की कृपा से उससे आगे की दूसरी भूमिका उसके सामने प्रकट हो जाया करती है। पूर्व भूमिका के दृश्य फिर उसके सामने नहीं आते। उदाहरणार्थ एक योगी जब वितर्कानुगत समाधि का अभ्यास करता है और निरन्तर अभ्यास के बल से उस भूमिका में लब्ध स्थितिक हो जाता है तो उसके अभ्यास में स्वतः ही अगली भूमिका के दृश्य आने लगते हैं और पीछे वाली भूमिका के दृश्य आने बन्द हो जाया करते हैं। इसी कारण श्री व्यासदेव जी महाराज ने अपनी पंक्तियों में इसका बिल्कुल स्पष्टीकरण कर दिया है। जैसे वितर्क विकलः सविचारः और उसके बाद विचार विकलः सानन्दः अर्थात् जिस समय योगी वितर्कानुगत समाधि में जय प्राप्त कर लेगा तो उसका अभ्यास समाप्त हो जाने के बाद विचारानुगम योग में वितर्कानुगम के दृश्य नहीं आयेंगे और जब द्वितीय श्रेणी विचारानुगन को अपने अभ्यास के बल से जीत लेगा तो स्वतः ही आनन्दानुगत समाधि का आरम्भ हो जायेगा और उसमें दुबारा विचारानुगत के दृश्य नहीं आयेंगे। ठीक इसी प्रकार आनन्दानुगत और अस्मितानुगत की बात भी है ज्यों-ज्यों योगी उच्चतर भूमिकाओं में जय प्राप्त कर लेता है त्यों-त्यों उसे निम्न श्रेणी की भूमिकाओं के अभ्यास की आवश्यकता नहीं रहती और उस परम गुरु परमात्मा की कृपा से उत्तरोत्तर आगे ही बढ़ता चला जाता है।

प्रश्न – हे गुरुदेव ! आप कृपा करके यह बतलाइये कि साधक को यह योग किस प्रकार से प्राप्त होता है? क्या योगाभ्यासी की अपनी शक्ति पर यह सब साधना आधारित है या कोई और भी उपाय है? मैंने कई जगह पर ऐसा देखा है कि कितने ही साधकों को तो जन्म लेने मात्र से ही योग ज्ञान हो जाता है और कितने ही ऐसे हैं कि काफी प्रयत्न करने पर भी उनको स्थिति उपलब्ध नहीं हो पाती।

उत्तर – हाँ पुत्र, ऐसा हुआ ही करता है। जो जन्म जन्मान्तर के अभ्यासी हैं चाहे वे अनन्त काल तक स्वर्ग में वास करके आये हों उनको जन्म ग्रहण करते ही अपने जन्म-जन्मान्तर के अभ्यास की स्मृति कायम हो जाती है और बिना किसी के प्रयास ही वे लब्ध भूमिक हो जाया करते हैं। भगवान पतंजलि देव योग दर्शन में स्वय ही इस बात का स्पष्टीकरण अपने शब्दों में करते हैं –

भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्

अर्थात् विदेह एवं प्रकृति लीन योगियों को जन्म लेने मात्र से ही योग ज्ञान की प्रतीति हो जाया करती है।

इस सूत्र के अनुसार संसार में जन्म लेने वाले प्राणियों को इस योग की प्रतीति दो ही प्रकार से होती है उनमें पहले प्राणी वे हैं जो अपने जन्म–जन्मान्तर के अभ्यास से सम्प्रज्ञात: योग की वितर्क और विचारानुगत समाधि में पूर्णत: प्रविष्ट हो चुके हैं और बाद में अभी निर्बीज समाधि तक नहीं पहुँच पाये थे अभी उन्हें विवेक ख्याति नहीं हुई थी इसी अवस्था में ही उनका देहपात हो गया। ऐसे योगी दो प्रकार के होते हैं– (1) विदेह, (2) प्रकृति लीन

(1) **विदेह:** – वे कहलाते हैं जो वितर्क समाधि द्वारा स्थूल महाभूतों का और उनके विशेषों का पूर्ण साक्षात्कार कर चुके हैं। इस लिये वे शरीर की असलियत को समझ करके देहाभिमान से शून्य हो गये हैं और इतनी साधना के बाद उनका शरीर छूट गया और वे संप्रज्ञात योग की आगे की सीढ़ियों तक नहीं पहुँच सके, अत: वे लोग विदेह कहलाते हैं और यह देव कोटि में माने जाते हैं।

(2) **प्रकृति लीन:** – वे योगी होते हैं जो स्थूल महाभूतों और उनके गुणों का पूर्ण साक्षात्कार करते हुए निर्विचार समापत्ति में पंच तन्मात्र, अहंकार और महत्तत्व और प्रकृति का साक्षात्कार कर चुके हैं तथा प्रकृति के इन सूक्ष्म तत्वों का साक्षात्कार करते हुए इन्हीं में लीन रहे हैं आगे की भूमिकाओं को तय नहीं कर पाये तथा अचानक देहपात हो गया इसलिए ये प्रकृति लीन कहलाते हैं। ये प्राणी भी देव कोटि में गिने जाते हैं इसलिए भगवान व्यासदेव जी ने इन लोगों के लिए –

विदेहानां भव प्रत्यय: तेहि स्वसंस्कार मात्रोपगेन चित्तेन पदमिवानु भवन्त: स्वसंस्कार विपाकं तथा जातीय कमीत वाहयन्तिं तथा प्रकृतिलया: साधिकारे चेतसि प्रकृति लीने कैवल्य पदमिवानुभवन्ति यावन्न पुनरावर्त्ततेऽधिकार वशाच्चित्तमिति कैवल्य पदमिवानुभवन्ति।

कह कर भगवान व्यासदेव जी ने इन्हें मुक्ति पद में तो नहीं माना किन्तु मोक्ष जैसी स्थिति को ये लोग प्रकृति लीन होते हुए भी मोक्ष पद जैसा समझते हैं क्योंकि अभी इनका ग्रंथि बेध नहीं हुआ अर्थात् विवेक ख्याति को प्राप्त नहीं हुए। इस लिये इनका चित्त साधिकार है और अधिकार वश इन लोगों का संसार में जन्म होते है क्योंकि पिछले जन्म–जन्मान्तरों में इनकी योग में ऊँची प्रगति रही थी इसलिए बहुत लम्बे समय तक ये विदेह प्रकृति लीन रहते हुए भी अपने आपको मुक्त आत्माओं की तरह अनुभव करते रहे थे। बुद्धि आल्हाद, आमोद प्रमोद आदि विशेष भावों में लीन हुए अपने आपको आनन्द मग्न मोक्ष रूप देखते रहे थे किन्तु विवेक ज्ञान के हुए बिना इनका चित्त साधिकार है इसलिए इन्हें संसार में दोबारा जन्म लेना पड़ता है।

और जन्म से ही इनको पूर्व जन्म जन्मान्तरों में जो अभ्यास किया था उसकी प्रतीति होने लगती है और फिर उस स्थिति को पा करके जल्दी ही अपने पूर्व लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। इन लोगों की कुछ हानि नहीं हुई क्योंकि ये विदेहावस्था व प्रकृतिलीनावस्था में परमानन्द में रहे तथा जन्म लेने पर अनेक जन्मों में किया गया अध्यास सामने आया और पुन: उसी योग

समाधि में प्रवृत्त हो गये। इसी प्रकार प्रश्न का गीता के छठवें अध्याय में भगवान श्री कृष्णजी से अर्जुन ने प्रश्न किया –

अयतिः श्रद्धयापेतो योगाच्चलित मानसः। अप्राप्य योग संसिद्धि कांगतिं कृष्ण गच्छति। कच्चिन्नोभय विभ्रष्टाश्छिन्ना भ्रमिव नश्यति। अप्रतिष्ठो महावाहो विमूढ़ो ब्राह्मणः पथि, एतन्मे संशय कृष्ण–छेत्तर्महईस्य शेषतः। त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्तानह्युप्रपद्यते।

अर्थात् अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण जी से प्रश्न करता है कि हे श्री कृष्ण जो व्यक्ति श्रद्धा से युक्त है और अपने आप को काबू में नहीं रख सका है और योगाभ्यास करते–करते जिसका मन विचलित हो गया है वह योग सिद्धि को न पा करके किस गति को प्राप्त होता है? कदाचित उभय भ्रष्ट हो करके फटे हुए, बादल की तरह नष्ट भ्रष्ट तो नहीं हो जाता क्योंकि अभी उसने अपने स्वरूप में स्थिति नहीं पाई और ब्रह्म ज्ञान को नहीं पा सका। मेरे इस संशय को नाश करने वाला आपके अतिरिक्त हे श्रीकृष्ण दूसरा कोई नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान श्रीकृष्ण जी ने कहा –

पार्थ नेवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते। न हि कल्याण कृत्कश्चिछ्ददुर्गितं तात गच्छति। प्राप्य पुण्य कृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीं समाः। शुचीनां श्री मतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्। एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृश्म्। तत्र तम बुद्धि सयोगं लभते पोर्वदेहिकम्। यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन। पूर्वाभ्यासेन तेनेव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः। जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मति वर्तते।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्ध किल्विषः।

अनेकं जन्म सं सिद्धस्ततो–याति परां गतिम्।।

भगवान श्री कृष्ण जी उत्तर देते हैं कि हे अर्जुन! ऐसे पुण्यात्माओं का इस लोक व परलोक में कहीं भी पतन नहीं होता। कोई भी शुभ कर्म करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं हो सकता। वे लोग पवित्र पुण्यात्माओं के लोकों को प्राप्त होकर बहुत समय तक वहाँ रह कर पुनः पवित्र श्री मानों के घर में ही जन्म ग्रहण करते हैं या बुद्धिमान योगियों के घरों में ही जन्म लेता है। इस मनुष्य लोक में इस प्रकार का जन्म लेना भी अत्यन्त दुर्लभ है और ऐसा जन्म हो जाने के बाद उन योगियों को अपना पौवदेहिक बुद्धि संयोग प्राप्त होता है और उस बुद्धि संयोग को पाकर वे लोग पुनः सिद्धि के लिये प्रयत्न करते हैं, क्योंकि पूर्व जन्म में उन्होंने इस प्रकार का अभ्यास किया था। इसी कारण से स्वतः वे समाधि मार्ग में लग जाते हैं और अभ्यास करते–करते अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

● ● ●

हमारे अन्तराल में छिपी दो दिव्य विभूतियाँ

– पूजा पाण्डेय, उन्नाव

मानव परमपिता परमात्मा का अंश है। इसके अन्दर क्षमता और सामर्थ्य अपार व असीम है। अनंत और अमूल्य विभूतियों से भरा मानव जीवन अति दुर्लभ है। इसमें विभूतियों का भण्डार भरा हुआ है। सिद्ध, संत, महात्मा, महापुरुष आदि मानव रूप में आकर इसकी बेशकीमती क्षमताओं से हमें परिचित कराते हैं। मानव इतना क्षमतावान है कि वह कभी दीन–दुर्बल, असहाय–अशक्त नहीं हो सकता। यह तो मात्र उसकी धूमिल परछाईं मात्र है। वस्तुतः मानव जीवन पाने के लिए देवता भी तरस उठते हैं, क्योंकि मानवीय क्षमता दैवीय शक्तियों से भी प्रबल एवं भारी पड़ती है। इसी जीवन में तपस्या का बहुमूल्य सुयोग–संयोग साकार होता है।

जीवन का आधार देह है। देह जीवन की अभिव्यक्ति है और व्यक्तित्व इसकी दिव्य सुगन्ध। इसी व्यक्तित्व में असीम क्षमताएँ सन्निहित हैं। इन क्षमताओं को रेखांकित करने पर मुख्य रूप से दो तत्व सामने आते हैं।

प्रथम– सृजनात्मक क्षमता। द्वितीय – आध्यात्मिक क्षमता।

सृजनात्मक क्षमता – अपनी अभिरुचि की पहचान एवं निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर इसका सुनियोजन। अपने अंदर निहित सामर्थ्य को पहचान कर उसे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर करना ही सृजनात्मकता है। सृजनात्मकता विपरीत परिस्थितियों एवं विचारों से निकल कर अपनी ऊर्जा का कुशल नियोजन है।

आध्यात्मिक क्षमता – सामर्थ्य इससे गम्भीर और कठिन है। यह सामर्थ्य अत्यन्त दुर्लभ है, परन्तु असंभव नहीं। यह अप्रत्याशित एवं अचानक प्रकट होकर राख को फिर से ज्वाला रूप में धधका सकती है। औचक आए प्रारब्ध को इसी विधि से मोड़ा–मरोड़ा जा सकता है।

सृजनात्मक क्षमता पुरुषार्थ है और आध्यात्मिक क्षमता महापुरुषार्थ। इस सबमें सृजनशील सामर्थ्य सन्निहित होती है। होती तो आध्यात्मिक सामर्थ्य भी है, परन्तु यह जरा पहुँच से परे है। यह सबके बस की बात नहीं है। सृजनात्मकता के दायरे में हम सभी आते हैं। हर एक में ऐसा कोई न कोई गुण एवं सामर्थ्य अवश्य होता है जिसे जान–समझकर एवं उसे सही दिशा में लगाकर सफलता के उच्च शिखर पर आरूढ़ हुआ जा सकता है। असफलता और असहयोग तो तभी आड़े आते हैं, जब स्वयं हमें ही अपनी पहचान नहीं होती कि हम क्या कर

सकते हैं और क्या नहीं। सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि हमारी रुचि किस विषय में है और हम क्या कर रहे हैं? अपनी रुचि के अनुसार कार्य शुरू किये जाने पर ही आधी सफलता मिल जाती है, शेष आधी सफलता उसे कुशल तरीके से करने में निहित होती है।

सृजनात्मक क्षमता में सर्वप्रथम हमारी रुचि सृजन के विषय में होती है। फिर अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए अपनी सामर्थ्य से बाहरी संसाधनों की तलाश की जाती है। संसाधनों की अधिकता या कमी तीव्र जीविका के लिए सहायक या बाधक नहीं होती है। समुचित सुनियोजन के अभाव में संसाधनों का अंबार भी हमें सफल नहीं बना पाता और कुशल नियोजन एवं लगन हो तो संसाधनों की कमी भी सफलता के रथ को रोक नहीं सकती। ऐसे तमाम जीवट वाले कर्मवीर योद्धा हुए हैं, जिन्होंने घोर अभावों में पल-बढ़कर सफलता के शिखर को स्पर्श किया है। साधनों की विपुलता लगन एवं निष्ठा के अभाव में विलासिता को जन्म देती है। लगन एवं निष्ठा फूँस की झोपड़ी को भी आलीशान महल में परिवर्तित करने का साहस रखती है। कठिनाइयाँ एवं मुसीबतें इनकी राह के रोड़े नहीं बनती वरन् इन्हें और भी मजबूत बनाती हैं। बुरी परिस्थितियाँ शारीरिक और मानसिक स्थिति को ही खराब कर सकती हैं, परन्तु कठिनाइयों के अंगारों में बढ़कर जो विचलित हुए बिना आगे बढ़ जाता है वह सोने के समान निखर उठता है। सृजन इसी का नाम है, जो घोर प्रतिकूलताओं में भी विजय पताका फहरा दे। विपत्तियों से घबराना नहीं, बल्कि उनका डटकर मुकाबला करना चाहिए। यही सफलता का आधार है, जो सृजनात्मक क्षमता का परिचायक है।

सृजनात्मक क्षमता की अभिव्यक्ति पुरुषार्थ के बल पर की जाती है, परंतु इसके बावजूद भी कुछ ऐसा होता है कि चरम पुरुषार्थ से भी निराशा एवं असफलता हाथ लगती है। अपना सब कुछ दाँव पर लगा देने पर भी जब जीवन की विपत्तियाँ एवं कठिनाइयां बनी रहती हैं तो मानना चाहिए कि प्रारब्ध कहीं आड़े आ रहा है। प्रारब्ध अप्रत्याशित एवं अक्समात फूटता है। अभी तो सब कुछ सही था, अभी क्या हो गया कि एकाएक सब बदल गया, जैसे – सुनामी लहरें उठीं और देखते ही देखते सबको सागर के गर्भ में समा ले गई। प्रारब्ध का कहर ऐसे ही बरपता है। प्रारब्ध के इस कहर से आध्यात्मिक क्षमता द्वारा ही बचा जा सकता है।

आध्यात्मिकता मनुष्य की अंतः चेतना का सुरम्य वैभव है। इसकी यह शक्ति एवं सामर्थ्य कभी समाप्त होने वाली नहीं है। वाल्मीकि रामायण में इस परिस्थिति का रोचक एवं मनोरम वर्णन मिलता है। रावण ने सोचा कि हम जीत गए। उसने सीता हरण को इसका सबसे बड़ा प्रमाण माना। माता सीता के लिए भी निराशा हताशा का क्षण था। अपने जादुई बल से रावण सीता के सामने नित नई अनहोनी घटना प्रस्तुत करता था। इस बल से एक बार तो वह भगवान राम का कटा सिर ही ले आया, परंतु माता सीता अडिग एवं अविचलित रहीं और

परिस्थितियां ऐसी बदलीं कि असंभव संभव में परिवर्तित हो गया। अंतत: जीत धर्म एवं सत्य की हुई। विजय एवं सफलता का यह रहस्य आध्यात्मिक सामर्थ्य में ही सन्निहित है।

देवता भी मानवीय सामर्थ्य के सामने नतमस्तक होते हैं। देवता सभी शक्तियों के स्वामी हैं। देवताओं को मंत्र के माध्यम से वशीभूत किया जा सकता है और मंत्र को तपस्वी, साधक सिद्ध कर लेते हैं। मानव की आध्यात्मिक सामर्थ्य असीम और अतुलनीय है। इसे तपस्या के माध्यम से बढ़ाया या विकसित किया जाता है। तपस्या से ब्रह्मांडीय ऊर्जा को अपने अंदर धारण किया जा सकता है और इस सघन ऊर्जा से तपस्वी तीनों लोकों में कुछ भी करने में सक्षम हो जाते हैं। वे काल को अपने अनुरूप मोड़ने–मरोड़ने में कुशल होते हैं। तपस्वी अपनी आध्यात्मिक सामर्थ्य के कारण ही प्रारब्ध के साथ खिलौने के समान खेलते हैं। आध्यात्मिक सामर्थ्य अति दुर्लभ एवं दुरूह है। इसके लिए महापुरुषार्थ की आवश्यकता होती है।

मानवी अंतराल में दिव्य विभूतियों का भण्डार भरा पड़ा है। आवश्यकता इसे पहचानने एवं सुनियोजित करने की है। जो इस क्षमता का कुशलतापूर्वक उपयोग करता है, वह सफलता के सोपानों को पार करता हुआ चला जाता है। सृजनात्मक क्षमता को विकसित कर भौतिक सफलता अर्जित की जा सकती है और आध्यात्मिक क्षमता को सुनियोजित कर अकल्पनीय एवं रोमांचक संसार में प्रवेश किया जा सकता है। व्यक्तित्व के इन दोनों पहलुओं का विकास कर समग्र व्यक्तित्व का निर्माण संभव है।

● ● ●

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र प्रजायन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयं।।

(स्कन्दपुराण मा. के. 3/48)

जहाँ अपूज्य व्यक्तियों का पूजन होता है और पूज्य व्यक्तियों का तिरस्कार होता है, वहाँ तीन बातें अवश्य होती हैं - अकाल, मृत्यु और भय।

अलौकिक कृपा की विलक्षण घटना

(गतांक से आगे)

यात्री के नाम पर उस बस स्टेशन चौराहे पर सिर्फ श्रीमती रमावती देवी खड़ी थीं एवं आगे की यात्रा के लिए किसी साधन का इन्तजार कर रही थी। इन्होंने अपने बायें कन्धे पर एक छोटा लेडिज पर्स लटका रखा था। वहाँ करीब आधे घण्टे तक खड़ी रही परन्तु आगे की यात्रा के लिए कोई साधन नहीं मिला। अब सूर्यास्त हो गया था परन्तु उजेली रात होने के कारण काफी दूरी तक अभी स्पष्ट दिखायी दे रहा था। उसी समय उस चौराहे से एक आदमी गुजर रहा था जिसकी उम्र लगभग पचास वर्ष के आसपास थी। वह धोती कुर्ता पहने हुए था एवं कन्धे पर एक गमछा रखा था तथा सिर पर गांधी टोपी पहने हुए था। उसकी भेष–भूषा जूनियर हाईस्कूल या हाईस्कूल के अध्यापक जैसी थी। चौराहे पर खड़ी श्रीमती रमावती देवी को भद्र परिवार की महिला समझकर वह इनके पास आकर बोला, 'बेटी! तुम्हें कहाँ जाना है एवं अकेली यहाँ क्यों खड़ी हो?' श्रीमती रमावती देवी ने अपने साथ घटित पूरी घटना की बात संक्षेप में बतलायी और कहा, 'चाचा जी हमें योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवाई जाना है।' उनकी बातों को सुनने के बाद उस आदमी ने कहा, 'बेटी! यह बड़ा ही बदनाम चौराहा है। सामने जो होटल देख रही हो लाइन होटल है। इस होटल की मालकिन सभी दुराचारों की जननी है। इस होटल पर सम्भ्रांत परिवार का कोई भी पुरुष या औरत नहीं आते। अब फिरोजाबाद की तरफ जाने वाली कोई भी सरकारी बस आने वाली नहीं है। रात का अन्धेरा होना आरम्भ हो गया है और अब तुम्हारा यहाँ खड़ा रहना खतरे को दावत देना है। अब तुम हमारी बात मानकर हमारे घर चलो। उसने हाथ के इशारे से अपना घर दिखलाते हुए कहा कि वह जो दीपक जल रहा है वही हमारा घर है। मेरे घर पर मेरे दो लड़के हैं एवं उनकी स्त्रियाँ हैं। हमारी एक अविवाहित बच्ची है एवं हमारी धर्मपत्नी है। सवाई आश्रम का नाम हमने भी सुन रखा है एवं यह भी सुना है कि वहां पर एक ब्रह्मचारी योगीराज जी निवास करते हैं जो ईश्वर के समान पूर्ण सामर्थ्य वान हैं। आज तुम हमारे घर रहो। कल प्रातः काल अपनी धर्मपत्नी एवं बच्ची के साथ तुम्हें भी सवाई धाम पहुंचवा दूंगा।

श्रीमती रमावती देवी ने कहा, 'चाचा आप चिन्ता न करें, कोई न कोई साधन मिलेगा एवं मैं योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा पहुंच जाऊंगी।' इनकी बातों को सुनकर उस आदमी ने कहा कि मैंने तो तेरे भले के लिए ऐसा कहा, जैसी तेरी इच्छा। इतना कहकर वह आदमी अपने घर को चला गया। श्रीमती रमावती देवी एवं वह आदमी होटल के बिल्कुल पास ही खड़े होकर

बात कर रहे थे एवं उस होटल की मालकिन इन लोगों की बातों को एकाग्र मन से सुन रही थी। उस आदमी के चले जाने के बाद होटल की मालकिन ने कहा कि मेडम आकर कुर्सी पर आराम से बैठ जाइये कोई भी गाड़ी आती है तो मैं आपको आप के गन्तव्य तक छुड़वा दूंगी। उनकी बातों को सुनकर श्रीमती रमावती देवी ने कहा, नहीं ठीक है मैं यहीं खड़ी होकर सवारी का इन्तजार करूँगी। इसके करीब पन्द्रह मिनट बाद एक बड़ी ट्रक उस होटल पर आकर रूकी उस ट्रक से चार लड़के नीचे उतरे, जिनकी अवस्था बीस से तीस वर्ष के मध्य थी। उन सबों ने सबसे पहले चाय बनवायी एवं होटल मालकिन के बिल्कुल करीब बैठ कर चाय पी। तदन्तर उन सबों ने माँसाहारी भोज़न खिलाने का आदेश होटल के नौकरों को दिया एवं उससे पूर्व खूब छक कर शराब पी। होटल मालकिन मुस्कराते हुए उन सबों से बात करती रही एवं आज्ञाओं का पालन करती रही। इसी दरम्यान होटल मालिका ने श्रीमती रमावती देवी का पूरा हाल चाल उन सबों को बतला दिया। जब वे सब जाने के लिए तैयार हुए तो दो लड़के श्रीमती रमावती देवी के सामने हाथ जोड़ कर कहाँ की बहन जी! आपको कहाँ जाना है? इन्होंने श्री सिद्धगुफा धाम जाने की बात कही। उन दोनों ने एक साथ कहा कि बहन जी! वह तो हमारे रास्ते में ही पड़ेगा एवं सफेद झूठ बोलते हुए कहा कि हम लोग कई बार वहाँ गये हुए हैं चलिये आपको वहाँ छोड़ देते हैं।

पढ़ी लिखी हमारी ये बहन उन सबों की बात पर विश्वास कर गयी। इन्होंने ट्रक से जाना स्वीकार कर लिया। लम्बी–लम्बी बड़ी दो सीटों वाली ट्रक थी। अत: सभी ट्रक के केबिन में ही बैठ गये एवं इनको भी केबिन में ही बैठने के लिए सादर आग्रह किया, परन्तु इन्होंने कहा कि मैं पीछे ढाले में बैठकर चलूंगी। इन सबों ने ट्रक के ढाले में रखी स्टेपनी पर त्रिपाल डाल दिया एवं उस पर बैठने का आग्रह किया एवं उस पर बैठ गयी। ट्रक ज्योंही चलना आरम्भ किया, श्री उरप्रेरक गुरुदेव भगवान की अहैतुकी कृपा से इन्हें अपने पतिदेव द्वारा बतलायी गयी बातें याद आ गयी कि आगरा से बीस–बाइस किलो मीटर की दूरी पर जी.टी. रोड के किनारे दोनों तरफ आश्रम का बोर्ड लगा है वहीं से उतर कर आश्रम जाना है। अत: ये स्टेपनी से उतकर ट्रक के बाड़ी में बने पटरों के बीच खाली बने स्थानों से आश्रम का बोर्ड देखने के लिए बायीं तरफ खड़ी हो गयी एवं बड़े एकाग्र मन से जी.टी. रोड पर बने बोर्डों को पढ़ना आरम्भ किया। मात्र बीस मिनट बाद सड़क पर लिखा बोर्ड जो सवांई धाम का था, इन्हें दिखलायी दिया। इन्होंने जोर–जोर से आवाज लगाई, 'गाड़ी रोको, गाड़ी रोको।' परन्तु गाड़ी रुकने के बजाय तेज स्पीड में आ गयी। ये ढाले से केबीन की तरफ गयी एवं ड्राइवर के सीट के पीछे जोर–जोर से पीटते हुए आवाज लगायी की गाड़ी रोको, गाड़ी रोको। गाड़ी अब पहले से भी तेज स्पीड में आ गयी। श्रीमती रमावती देवी को लड़कों की नीयत का पूरा–पूरा पता लग गया एवं चन्द मिनटों में भविष्य की भयावह तस्वीरें इनके हृदय में अंकित हो गयी।

अनाथनाथ की ऐसी अहैतुकी कृपा है कि विपत्ति के समय में उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने वालों को उनकी याद आ ही जाती है। हमारे योगेश्वर द्वय मौन आर्त प्रार्थना सुनने में सबसे दक्ष हैं। सन् उन्नीस सौ अट्ठासी के वाराणसी के योग प्रचार कार्यक्रम में श्री गुरुदेव भगवान ने श्री मुख से कहा था, 'लल्ला! हमारे श्री प्रभु जी की वाणी है कि जब कोई साधक–जिज्ञासु संकट में हमें मौन प्रार्थना द्वारा आर्त्तभाव से पुकारता है तो उसकी मौन प्रार्थना हमें नगाड़े की ध्वनि जैसी तेज आवाज में सुनायी देती है।' श्रीमती रमावती देवी के मन में दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी के चरण कमलों में, श्री गुरुदेव के प्रति श्रद्धा के भाव बहुत अधिक हैं। अतः उन्होंने मन ही मन बाबा जी से प्रार्थना की, 'हे बाबा जी! आज मैं अनाचारियों एवं अत्याचारियों के चंगुल में पूरी तरह फँस गयी हूँ। हमारा धन और धर्म दोनों समाप्त हो जायेगा। आज ये सभी अनाचार के बाद हमारे प्राण अवश्य ही समाप्त कर देंगे। इस विपत्ति में मेरी सहायता करने वाला कोई नहीं है। आप तत्काल मेरी रक्षा करो। त्राहि माम्! त्राहि माम्!' इधर श्रीमती रमावती देवी रक्षा की गुहार, अखिल ब्रह्माण्ड नायक, परम योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज से कर रही थी एवं उधर अनाचारी एवं अत्याचारियों का समूह अपनी दूषित मनोकामना पूर्ति हेतु ट्रक को बिल्कुल फुल स्पीड चलाते हुए जी टी. रोड पर आगे बढ़ रहा था। श्रीमती रमावती देवी आत्म रक्षार्थ की गयी प्रार्थना के अन्तिम शब्द समाप्त होते होते जटाधारी परम योग योगेश्वर दादा जी आकाश मार्ग से ट्रक के ढाले में वहीं उतरे जहाँ श्रीमती रमादेवी ट्रक में खड़ी थी। वे अनाथनाथ ट्रक के ढाले में रखी स्टेपनी पर बैठ गये एवं श्री मुख से बोले, 'मुनिया हमारी गर्दन पकड़कर हमारी पीठ पर बैठ जाओ।' उनकी आज्ञा पाते ही वह उनकी पीठ पर सवार हो गयी एवं मात्र दस मिनट में दादाजी, आकाश मार्ग से एक भूखण्ड पर नीचे उतरे। उनके नीचे उतरते ही श्रीमती रमावती देवी पीठ से उतर कर जमीन पर खड़ी हो गयी।

नवागन्तुक योग जिज्ञासु साधकों को इस कृपा प्रसंग से सम्बन्धित कुछ अन्तरंग बातों को स्पष्ट करना आवश्यक है। योगाधिपति दादा गुरुदेव जब ट्रक के ढाले में प्रगट हुए तो उसके सम्बन्ध में जब श्रीमती रमावती देवी से स्पष्टीकरण चाहा एवं कई प्रश्न पूछे यथा, श्री महाप्रभु जी का शरीर कैसा था ने बतलाया वे बिल्कुल सफेद अचला कमर में लपेटे हुए थे तथा उनकी जटायें काफी लम्बी एवं बिल्कुल काली थीं। उनका मुख मण्डल इतना मनोहर है कि वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। जब उस बहन से यह पूछा गया कि उनके पीठ पर सवार होने पर आपको कैसा अनुभव हो रहा था। उन्होंने कहा, 'जैसे तीन–चार साल के बच्चों को अपनी पीठ पर बैठाने का होता है वैसे ही अनुभव हो रहा था। मैंने खूब अच्छी प्रकार से उनकी गर्दन को अपने दोनो हाथों से पकड़ रखा था। उस स्थान का विवरण जानना चाहा तो श्री बहन जी ने बतलाया कि जहाँ दादा गुरुदेव आकाश मार्ग से धरातल पर उतरे, उस स्थान पर एक छोटी

पर्णकुटी बनी हुयी थी। एक हवन कुण्ड में धुनी जल रही थी। वहाँ छः योगी महात्मा समाधिस्थ थे एवं सात–सात लगोटियाँ रस्सी के सहारे सूखने के लिए रखी गयी थीं। वहाँ करीब बीस एकड़ के विशाल क्षेत्र में गुलाब एवं केले के छोटे–छोटे पौधे लगे हुए थे। बगल में ही एक नदी बह रही थी। उस पर्णकुटी के पास ही एक पेड़ था जिसकी पत्तियाँ सागौन के पत्ते की तरह थी। वहाँ का वातावरण बड़ा ही मनोहर एवं आनन्ददायक था। परम योग योगेश्वर एवं स्वतन्त्र ईश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने बतलाया कि मुनिया इस स्थान का नाम मुक्तिधाम है। अब आपको कृपा प्रसंग की मुख्य धारा में ले चलते हैं। वहाँ मुक्तिधाम पहुँचने पर श्री गुरुदेव ने हमारी गुरुबहन श्रीमती रमावती देवी से कहा, 'तुम लोग तो सवाई धाम पहुंचने के लिए अपने घर से प्रातः साढ़े पाँच बजे ही बिना कुछ खाये–पीये यात्रा आरम्भ किये थे। तुम्हें भूख तो लगी होगी, बतलाओ क्या खाना चाहती हो?' उसने कहा कि हमें भूख नहीं लगी है। दादा गुरुदेव की तुलना सांसारिक प्राणियों से करना तो महान मूर्खता की बात है परन्तु मैं मूर्ख बनना प्रसन्नता से स्वीकार करते हुए इसको स्पष्टता से समझाने के लिए यह उदाहरण देना समझता हूँ। जिस प्रकार बाबा अपने पुत्र के लड़के –लड़कियों से अगाध प्रेम करता है वही हालत हमारे महाप्रभु की है। दादा गुरुदेव ने अपने मुखारबिन्दु से कहा, 'मुनिया तुझे भूख लगी है इस पेड़ की एक पत्ती तोड़कर उसे हवन कुण्ड में डाल दो एवं दो–तीन मिनट बाद उसे निकाल लो।' उसने वैसा ही किया एवं जब वह उसे हवन कुण्ड से बाहर निकाली तो वह मोटी रोटी (टिक्कर) के समान हो गया था।

करुणा वरुणालय कल्याणघन श्री महाप्रभु जी ने कहा कि इसे भर पेट खा लो। आधा खाते–खाते उनका पूरा पेट भर गया एवं तदन्तर उन्होंने अपने कमण्डल से उन्हें जल पिलाया। उसका स्वाद पूछने पर बहन जी ने बतलाया कि उसके स्वाद का ठीक–ठीक वर्णन तो किया नहीं जा सकता परन्तु ऐसा समझिये की बहुत अच्छी स्वादिष्ट सब्जी में आटा गूंथ कर रोटी बनायी जाय, शायद ऐसा ही लग रहा था।

इनके पति को ढूंढने आप लोगों को एत्मादपुर बस स्टैण्ड ले चलते हैं। बस से एत्मादपुर लगभग साढ़े सात बजे आदरणीय भाई जी बस से नीचे उतरे। वह थोड़ी देर तक श्रीमती रमावती देवी के बस का इन्तजार करने लगे। वह बस से नीचे नहीं उतरी। वे तत्काल बस पर चढ़ गये एवं वे रमावती–रमावती पुकारने लगे। कोई उत्तर नहीं मिला और न तो वह बस में दिखायी दी। वे नीचे उतर कर सोचने लगे की आखिर रमावती कहाँ गयीं। उनके मन में विचार आया कि हो सकता है वह गलती से किसी दूसरे स्टापेज पर उतर गयी होंगी। उन्होंने टैक्सी का पता लगाया तो लगा कि टैक्सी टूण्डला रेलवे स्टेशन पर मिलेगी। वह रेलवे स्टेशन टूण्डला चले गये। वहाँ से आगरा जाने के लिए टैक्सी भाड़े पर तय किये एवं एत्मादपुर से गाड़ी के बायें तरफ सिर निकाल–निकाल कर रमावती–रमावती पुकारते हुए आगरा बस स्टेशन तक

गये एवं वहाँ से फिर रमावती–रमावती पुकारते हुए एत्मादपुर बस स्टेशन आ गये। ये उस टैक्सी से श्री सिद्धगुफा सवांई धाम पहुंच गये एवं वहाँ उसे भाड़ा दे दिया। जिस समय हमारे ये भाई श्री सिद्धगुफा सवांई धाम पहुंचे, उस दिन अष्टमी तिथि की रात्रि थी एवं सवा नौ बज रहे थे। महाप्रभु जी का स्वरूप रखा हुआ था एवं उसी के पास तख्त पर लगे आसन पर हमारे आपके आराध्यदेव विराजमान थे। श्री सिद्धगुफा का प्रांगण हमारे आदरणीय गुरु भाई–बहनों एवं योग जिज्ञासुओं से खचाखच भरा हुआ था। योगाधिपति महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के प्रिय ग्राम सवांई धाम के भजन कीर्तन के मण्डली के लोग 'सीटी बज रही सिद्ध गुफा पर, भैया हो जाओ तैयार' नामक भजन पूरी लयता से तनमयता से गा रहे थे। हमारे गुरुभाई श्री गुप्ता जी ने उस समय जाकर श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में प्रणाम अर्पित किया एवं श्री मुख ने आशीर्वाद दिया। तदन्तर भाई श्री गुप्ता जी प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़कर खड़े हो गये। श्री मुख ने कहा, ''लल्ला क्या बात है?' श्री गुप्ता जी ने पूरे घटना का वर्णन किया। आराध्यदेव जी ने महाप्रभु जी के चरणों में हाथ जोड़कर प्रणाम किया फिर श्री गुप्ता जी के बांये कन्धे पर अपना दांया हाथ रखा एवं श्री गुरुभवन में आकर सावधान मुद्रा में अपनी चारपाई पर विराजमान हो गये एवं श्री गुप्ता जी उनके पास ही फर्श पर नीचे बैठ गये। श्री मुख ने आदेश दिया, 'लल्ला! क्या बात है? खोलकर बतलाओ। श्री गुप्ता जी ने पूरी घटना का सविस्तार वर्णन सुनाया उनकी पूरी बात सुनकर श्री आराध्यदेव जी आम आदमी की तरह उदास एवं निराश दिखे एवं फिर श्री मुख से बोले, लल्ला! हमारी बच्ची के साथ यह तो बड़ा गलत हुआ। पता नहीं इस समय वह कहाँ एवं कैसी हालत में होगी। घबराओ नहीं अब इसी समय से उसे ढूंढने का प्रयत्न कर रहे हैं।' आराध्यदेव जी ने हमारे आदरणीय बड़े गुरुभाई टूण्डला निवासी श्री भुवनेन्द्र झा को आदेश किया कि हमारे बच्चे अपने इन चार भाइयों को इस कमरे में अभी बुलाकर लाओ। श्री मुख ने जिन चार भाइयों को अपने कमरे में बुलाने का आदेश दिया, उस समय उन चारों के पास चार पहिया गाड़ी थी एवं सभी गुरुदेव भगवान के विशेष कृपा पात्र शिष्य थे। थोड़ी देर में सभी गुरुभवन में आकर श्री गुरु चरणों में प्रणाम निवेदित कर श्री गुरुदेव भगवान के पलंग के पास बैठ गये। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा, 'लल्ला! ये तुम्हारे गुरुभाई है। इनकी पत्नी रमावती जो हमारी बच्ची है एवं जिसने अपने शरीर पर काफी जेवरात पहनी हुई हैं, आगरा बस स्टैण्ड से एत्मादपुर के बीच बस से कहीं गायब हो गयी है। वह श्री प्रभु जी के अवतारोत्सव में भाग लेने पहली बार सवांई धाम आ रही थीं। अब तुम लोग इसी समय गाड़ी लेकर उसे ढूंढने निकल जाओ एवं ऐसा प्रयत्न करो की वह मिल जाये। जाओ अभी उसे ढूंढने निकल जाओ।'

सभी भाइयों के चले जाने के बाद श्री मुख ने चारपाई के पास बैठे हमारे गुरुभाई श्री गुप्ता जी से अपने मुखारबिन्द से कहा, ''लल्ला! हमारी बच्ची के साथ जो कुछ हुआ, वह बड़ा ही गलत हुआ। समय बड़ा ही खराब चल रहा है। मैं पूरा–पूरा प्रयास कर रहा हूँ कि हमारी बच्ची

रात में ही वापस आ जाय। यदि किसी कारणवस वह नहीं मिल पायी तो सवेरे प्रभु जी की आरती के बाद पुलिस में एफ आई आर. दर्ज करायी जायेगी। तुम यहीं बैठकर मंत्र जप करो एवं श्री प्रभुजी से प्रार्थना करो कि वह जल्दी वापस आ जाय।' अपने सर्व समर्थ गुरुदेव एवं पूर्ण योगेश्वर को इस प्रकार बात करते सुनकर महान आश्चर्य होता है। योगिराज श्री देव रहा बाबा ने इसी प्रकार के श्री गुरुलीला के चरित्रों को आत्मसात् करते हुए, हमारे आप के भाग्य विधाता श्री गुरुदेव भगवान से निवेदन किया था, 'हे मेरी आत्मा! और योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के पूर्ण उत्तराधिकारी, आपको जन साधारण के बीच में रहकर जन कल्याण के लिए भुवन मण्डल पर विचरते हुए देखकर मुझे यह महान आश्चर्य होता है कि क्या यही योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज है, जिनके स्थूल दर्शनों के लिए लोकाधिपति सदैव हाथ जोड़े प्रार्थना करते रहते है। आप अपने को कैसे छिपाये रहते हैं, लाख प्रयत्न करने पर भी यह रहस्य मैं नहीं समझ पा रहा हूँ।''

प्रातः पाँच बजे तक श्रीमती रमावती देवी को खोजने के लिए निकले हमारे चारों आदरणीय गुरुभाई वापस आ गये एवं श्री चरणों में नकारात्मक परिणाम निवेदन किया। तदन्तर श्री मुख ने कहा कि आज आराध्यदेव का जन्मोत्सव है। अतः उनकी अवतारोत्सव की आरती करके पुलिस में रिपोर्ट की जायेगी। अब श्री सिद्धयोग के सुयोग्य एवं साधनारत पाठक समुदाय हमारे साथ महाप्रभु जी के निवास स्थान मुक्ति धाम चलें जहाँ श्री रमावती अपने पतिदेव के पास जाने के लिए दादा गुरुदेव से प्रार्थना कर रही है। हमारी इस बहन ने महाप्रभु जी से प्रार्थना किया कि हमारे पतिदेव को दिखलाने की कृपा की जाय। उस समय रात्रि के एक बज रहे थे। बाबा जी ने अपना दाहिना हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में उठाकर कहा, मुनिया देखो अपने पतिदेव को। श्री महाप्रभु जी के कर-कमलों से निकली हुई प्रकाश की मोटी किरण मुक्ति धाम से निकल कर श्री सिद्धगुफा को चीरती हुई, श्री गुरुदेव की चारपायी के आधे करवट बांये हाथ के बल लेटे श्री गुरुदेव भगवान पर पड़ रही थी एवं पूरा गुरुभवन उस प्रकाश से ओत-प्रोत था। श्री गुप्ता जी, आराध्यदेव के पैर की तरफ चारपायी के नीचे बैठे हुए उदास एवं निराश मन से मंत्र जप कर रहे थे। यह दृश्य देखकर श्री रमावती देवी ने प्रार्थना किया, 'मुझे अपने पतिदेव के पास भेजने की कृपा की जाय।' बाबा जी ने अपने श्री मुख से कहा, 'मुनिया तुम अनाचारियों एवं अत्याचारियों के चगुल में फँस कर विलाप कर रही थी, अतः तुम्हें अपने पास लाया। इस स्थान पर तुम्हारे गुरुदेव नित्य प्रातः पौने चार बजे आते हैं, मैं तुम्हें उन्हीं के साथ वापस भेज दूंगा। तब तक तुम इस स्थान का अच्छी प्रकार भ्रमण कर लो। इस स्थान का दर्शन लाभ बहुत पुण्यात्माओं को ही होता है। श्रीमती रमावती देवी ने उस स्थान का भ्रमण किया एवं प्रातः तीन बजकर चालीस मिनट पर महाप्रभु जी के आश्रम पर आ गये।

ठीक पौने चार बजे प्रातः काल आराध्यदेव श्री महाप्रभु जी के निवास स्थली मुक्तिधाम

पहुँच गये एवं पहुँचते ही परात्पर ईश्वर दादा गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम अर्पित किये। श्री महाप्रभु जी ने अर्घ मुस्कान के साथ कहा, 'बेटा चन्द्रमोहन! क्या हाल चाल है?' श्री गुरुदेव भगवान ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया, 'हे प्रभो! आपकी कृपा से सर्वत्र कुशल मंगल है एवं आपके श्री सवांई धाम पर आपका अवतारोत्सव खूब धूम-धाम एवं महान उत्साह एवं आनन्द के साथ मनाया जा रहा है।' श्रीमती रमावती देवी ने इसी समय श्री गुरुदेव भगवान को साष्टांग प्रणाम किया। तदन्तर दादा गुरुदेव ने अपने मुखारबिन्दु से कहा, 'बेटा! यह तुम्हारी बच्ची रमावती है। कल अनाचारियों ने इसके अपहरण करने की कोशिश की। मैं इसे यहाँ ले आया। अब इसे अपने साथ सवांई आश्रम लेते जाओ, जहाँ इसके पतिदेव हैं।' श्री गुरुदेव भगवान ने कहा, 'जो प्रभु जी! आपकी जैसी आज्ञा।' श्री गुरुदेव भगवान ने श्री रमावती से प्रश्न किया, 'मुनिया यहाँ आयी कैसे थी।' उसने उत्तर दिया, 'गुरुदेव! मैं बाबा जी के पीठ पर बैठ कर आयी थी।' श्री गुरुदेव भगवान ने कहा, 'तुम्हारा वजन तो हमारे बराबर ही है मैं तुझे कैसे लेकर चलूंगा।' आराध्यदेव की यह बात सुनकर दादा गुरुदेव हँस दिये एवं श्री मुख से बोले, बेटा! यह बहुत ही निराश एवं उदास है, इसे अपने साथ आश्रम लेकर जाओ।' उसके बाद आराध्यदेव ने दादाजी के श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम किया एवं श्री मुख से बोले कि पूर्ण आशीर्वाद है।

उसके बाद आराध्यदेव जी ने कहा कि मुनिया हमारे पास आ जा एवं बिल्कुल पास में सटकर खड़ी हो जा। जब मैं कहूँ कि आँख बन्द कर लो तो आँख बन्द कर लेना एवं जब मैं कहूँ कि आँख खोलो तब आँख खोलना। इसके पहले आँख मत खोलना। यदि उसके पूर्व आँख खोल दोगी तो अपने पति के पास नहीं पहुँच पाओगी। खूब अच्छी प्रकार सोच-समझ लो, यदि ऐसा करोगी तभी हमारे साथ चल सकोगी। उसने प्रार्थना किया कि गुरुदेव मैं आपकी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करूंगी। आराध्यदेव जी ने कहा, ठीक है अब तुम अपनी आँख बन्द कर लो एवं जब तक मैं न कहूँगा, बिलकुल आँख मत खोलना। श्री मुख ने मात्र पाँच मिनट बाद कहा, 'मुनिया! अब अपनी आँखें खोल लो।' जब श्रीमती रमावती देवी ने अपनी आँखें खोली तो गुरुदेव के साथ अपने को आगरा बिजली घर स्टैण्ड पर जमीन पर खड़ी पाया। तदन्तर आराध्यदेव जी ने कहा कि मुनिया इस नम्बर की रोडवेज बस इस स्टेशन से ठीक साढ़े पाँच बजे बरहन के लिए प्रस्थान करेगी, उसमें बैठ जाना एवं कन्डक्टर तथा ड्राईवर से कह देना कि हमें सवांई आश्रम पर उतार दीजिएगा। श्री गुरुदेव भगवान ने अपने कुर्ते की जेब से निकाल कर दस रुपये का नोट दिया। उस समय प्रातःकाल के साढ़े चार बज रहे थे। उनकी पूरी बात सुनकर श्रीमती रमावती देवी ने प्रार्थना किया, 'गुरुदेव! रातभर मैं दुनियां की नजरों से गायब रही एवं सभी आश्रम पर उपस्थित भाई-बहन यह बात जान ही गये होंगे। ऐसी स्थिति में जब मैं आश्रम पहुँचूंगी तो लोग भी शक के निगाह से देखेंगे तथा प्रश्नों की बौछार करना आरम्भ कर देंगे। अतः ऐसी कृपा करो कि मैं आश्रम में प्रवेश करूँ, तो हमें कोई देख न सके। उसकी प्रार्थना

सुनकर श्री मुख ने आदेश दिया कि ठीक है मुनिया इसी बस स्टेशन से ठीक सात बजे बरहन के लिए दूसरी बस प्रस्थान करेगी जिसका अमुक नम्बर होगा। उस बस से आ जाना। यह रोडवेज बस श्री सवांई धाम के मुख्य द्वार पर उस समय पहुंचेगी जिस समय मैं श्री महाप्रभु जी की जन्मोत्सव की मुख्य आरती के लिए ॐ शब्द का उच्चारण कर रहा हूँगा। उस समय सबकी दृष्टि श्री महाप्रभु जी के स्वर अर्थात् गुफा की तरफ होगी। तुम्हारी तरफ किसी का भी ध्यान नहीं होगा। श्रीमती रमावती ने ठीक वैसा ही किया जैसा गुरुवर का आदेश था। वह जिस समय बस से उतरकर आरती कराने वाले समुदाय में प्रवेश किया उस समय श्री आराध्यदेव जी आरती के लिए ॐ शब्द का उच्चारण कर रहे थे। उसी समय उसने जाकर श्री चरणों में शीश रखकर प्रणाम किया। श्रीमुख ने देखकर कहा आ गयी मुनिया, जाओ कमरे में हमारी चारपायी के पास तुम्हारे पतिदेव बैठे हैं मिल लो। इस प्रकार इस भाग्यवान दम्पति का श्री गुरु भवन में मिलाप हुआ।

अब यह कृपा प्रसंग एक उद्घोष के साथ विश्रामित है :–

मन में विश्वास हो तो,
गमे दिल को सरूर मिलता है।
गुरुवर के दर पर जो भी आता है,
उसे कुछ न कुछ जरूर मिलता है।।

आदरणीय भाई बहनों, एक बात को याद रखना :–

पानी में नाव चले तो चले,
मत नाव में पानी आने दो।
संसार में चाहे मन जाये,
मन में संसार न आने दो।।

न अभिषेको न संस्कारो सिहस्य क्रियते वनैः।
विक्रमार्जित उर्जस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता।।

वन में सिंह का न तो कोई अभिषेक करता है और न ही संस्कार। अपने विक्रम से ऊर्जा का एकत्रीकरण करके सिंह स्वयं ही मृगेन्द्र बनता है।

योग-आसन

भूसम्प्रसारणासन

विधि – यह आसन कर लेने पर करने वाले मनुष्य की आकृति इस प्रकार की दिखाई देती है जिस प्रकार पक्षी अपने पंखों को फैलाकर उड़ रहा हो। अत: कहीं पर तो इसको लोगों ने पक्षी आसन कहना शुरू कर दिया है। इसको करने के लिए सीधे बैठकर अपने दोनों पैरों को लम्बा प्रसार करके इतना फैला दें कि दोनों पैरों के बीच में कम से कम 6 बालिस्त का अन्तर हो जाय, फिर दोनों पैरों के अँगूठे दृढ़ता से पकड़कर अपने शिर को झुकाकर दोनों पैरों के मध्य भाग में इस प्रकार लगा दें कि पैरों के तनाव में कोई भी कमी न आये (सम्भव हो सके तो शनै: शनै: छाती भी दोनों फैले हुए पैरों के बीच में लगाने का प्रयत्न करें। इस आसन का नाम भूसम्प्रसारण एवं नमनासन है।

समय – प्रथमाभ्यास में अपने शरीर के बलाबल को देखकर 20 सैकिण्ड से आरम्भ करके 2 मिनट तक ले जायँ।

लाभ – अस्थि पंजर में दृढ़ता देता है। यकृत प्लीहा के लिये पश्चिमोत्तान की तरह ही पूर्ण लाभदायक है। आमाशयों में पूरी प्रगति होती है। अत: भूख बढ़ती है, वात निवृत्ति करके आरोग्य प्रदान करता है।

• • •

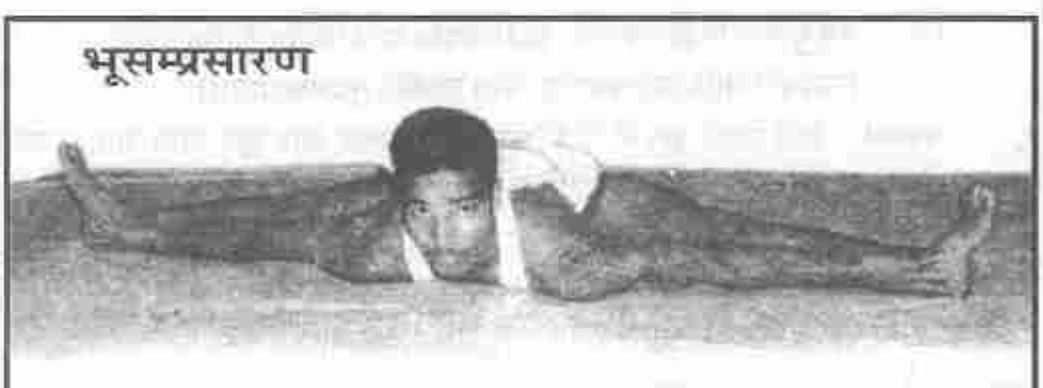

योग - अमूल्य निधि एवं दिव्य-वरदान

– द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

(1) चिन्तां कृथा मा नु वृथा मनस्त्वं, सुखाय नो धाव प्रमत्तवत्त्वम्।
सुखं भृग्यमाणन्तु जगद्धि सर्वं, सुखं वस्तुतः किं परिचिन्तनीदम्।।

भावार्थ – रे मेरे मन! तू व्यर्थ की चिन्ता मत कर। पागल की तरह सुख के पीछे मत भाग। सारा जगत ही सुख की तलाश में परेशान है। वास्तव में 'सुख' है क्या, इस पर सम्यक् विचार करना चाहिए।

(2) शरीरमाधृत्य विषह्य दुस्सहं, कष्टं जनन्याजठरे निवासतः।
बाह्यागते सत्यपि मातृकुक्षितः, समारमत रोदनतः शिशुत्वम्।।

भावार्थ – माता के गर्भ में निवास करते अत्यन्त दुस्सह कष्ट झेलने के पश्चात् शरीर का पिण्ड मिला है। मातृ गर्भ से बाहर आ जाने पर भी 'रोने' से ही शिशुत्व आरम्भ हुआ, यह सर्वविदित है।

(3) मुदं प्रहर्षं प्रददाति पुत्रः, पौत्रोऽथवेतर बन्धनाश्रयात्।
बभूव काचिज्जननी च कश्चित्, लेभे पदं स्वाद् व्यतिरिच्यमानम्।।

भावार्थ – 'पुत्र' उत्पन्न हुआ है, बड़े हर्ष और प्रसन्नता के भाव प्रकट किये जाते हैं। सम्बन्धों के कारण वही जीव किसी का 'पौत्र' बनकर आ जाता है। इसी तरह जन्मदात्री जननी हो गई और अन्यान्य सम्बन्धियों के भी अपने–अपने सम्बन्धों के कारण पद में परिवर्तन हो जाया करता है।

(4) बभूवुरन्येऽपि क्रमेण सर्वे, कश्चित्पिता वा च पितामहोऽपि।
पितामही सापि प्रसन्नवदना, पौत्रे स्वकीये मुदमादधाना।।

भावार्थ – इसी प्रकार क्रम से कोई उस शिशु का पिता और कोई दादा नाम से जाना गया। दादी भी अपने पोते को देख–देख खुशियां मनाती और प्रसन्न मन दिखाई देती है।

(5) जीवः शिशुत्वे भवतीति नूनं, आनन्ददः स्वानपरांश्च सर्वान्।
स एव जीवो निजप्रारभवीयं, तनूं विहायात्र समागतो न?

भावार्थ – यह तो सच है कि एक बच्चा बचपन में सभी को आनन्द प्रदान करता है, चाहे वे अपने हों या पराये। यहाँ यह विचार स्वभावतः उठता है कि क्या वही जीव अपने पूर्वजन्म के शरीर को त्याग कर ही यहां शिशुरूप में ही आ गया है?

(6) **कश्चित्कदाचिन्मनुजस्य योनौ, भवेदत्र प्राप्तः शिशुवेषरूपे।**
वृद्धत्वमाप्ते सति तन्मृतिः किं, दुःखन्न शोकं विदधाति भूरि।।

भावार्थ – जो शिशुरूप में आज यहाँ आया है, वही जीव कदाचित् पूर्वजन्म में मनुष्य योनि में रहा हो और बुढ़ापे में मर जाने के पश्चात् क्या वह अपने सम्बन्धियों के लिए महान् दुःख और शोक का कारण नहीं बना करता है?

(7) **इत्थं विचार्येति सुनिश्चितं यत्, जीवः शरीरं प्रजहाति यावत्।**
तत्रास्ति शोकस्तदुज्जिहाने, प्रयाति यत्रापि समुत्सवाय।।

भावार्थ – इस प्रकार विचार करने पर यह सुनिश्चित हो जाता है कि जीव जहाँ शरीर को छोड़कर जहाँ कहीं भी चला जाता है। वहाँ, जहाँ शरीर छोड़ा, शोक छा जाता है और जहाँ उस जीव ने नवीन कलेवर धारण किया, वहाँ खुशियाँ और उत्सव सा वातावरण बन जाया करता है।

(8) **एको हि जीवः प्रकरोति शोकः, आनन्दहेतुश्परत्रतो गतः।**
एवं धरायां ननु मर्त्यलोके, शोकस्य हर्षस्य निरन्तरं क्रममु।।

भावार्थ – वही एक जीव एक स्थान पर तो शोक का कारण बना और जहाँ वह प्रकट हुआ वहाँ वह आनन्द का कारण बना जा रहा है। इस प्रकार इस धरती के तल पर जिसे 'मर्त्यलोक' की संज्ञा दी जाती है, शोक व हर्ष का एक निरन्तर क्रम चला करता है।

(9) **शास्त्रस्य वचनेषु तथोपनिषत्सु, सर्वत्र वाग्भिरयेव ख्यातः।**
बध्नाति जीवः स्वयमेव कुर्मभिः, यथा विधत्ते स तथैव भुंक्ते।।

भावार्थ – शास्त्रोक्त वचनों तथा उपनिषदों के वाक्यों में और अन्यत्र सर्वत्र कल्याणमयी वाणियों में भी यह ही कहा गया है कि यह जीव स्वयं अपने किये कर्मों द्वारा बंधा हुआ है और वह जो कर्म करता है उनका वैसा ही फल भोगता रहता है।

(10) **सुखस्य दुःखस्य विषादहर्षयोः, क्रमो वरीवर्ति समग्रसंसृतौ।**
जीवो जगत्येति प्रयात्यतः कुतः, चक्रायते जीव उपर्यधस्तः।।

भावार्थ – सुख व दुःख का, विषाद और हर्ष का यह क्रम अक्षुण्णरूप से समस्त संसार में चल रहा है। यह जीव इस संसार में आता है और शरीर त्यागने के पश्चात् दतों से चला जाता है – कहाँ– पर जैसे चक्र ऊपर और नीचे आया करता है वैसे ही इसकी अज्ञात गति हुआ करती है।

(11) **कर्मानुबन्धीनि समग्र लोके, भूतानिजातान्यनुहश्यवन्ति।**
प्राग्जन्मनां विस्मृतिमेति जीवो, जानाति नो भाविनि का गतिः स्यात्।।

भावार्थ – जो–जो प्राणिमात्र यहाँ दिखाई देते हैं इस संसार में, वे सभी कर्मों के बन्धनों से जकड़े हुए हैं। जीव, अपने पूर्वजन्मों को भूल जाता है और यहाँ से भी जाने पर आगामी जीवन धारण कहाँ होगा, उसका भी उसे पता नहीं रहता।

(12) **नूनं परं विस्मय कारि चित्रं, प्रस्तूयते भगवता परमात्मना तत्।**
बद्धः स्वकृतिभिः परिभुज्यमानः, जीवो विधत्ते बहुरूपतामिह।।

भावार्थ – उस ईश्वर अथवा परमात्मा द्वारा निश्चित ही, अत्यन्त आश्चर्यभरा और विचित्र चित्र प्रस्तुत किया गया है। अपने ही क्रियाकलापों के द्वारा आबद्ध यह जीव कर्मफल को भोगता हुआ, इस संसार में, अनेकानेक रूप धारण करता रहता है।

(13) **किमस्ति सुकृतं किञ्चापि दुष्कृतं, प्रारब्धभोगान् नियतानु स जीवः।**
भुंक्ते यदा यौ नियतांश्च श्वासान्, कयैव शक्त्या परयातिबलया।।

भावार्थ – क्या करना अच्छा है और क्या करना बुरा है – यह जीव तो अज्ञात रूप में निश्चित हुए प्रारब्ध भोगों का मात्र भुगतान करता रहता है। किसी अति बलशाली परम शक्ति के द्वारा वह केवल निश्चित संख्या के श्वासों को ही ग्रहण करता रहता है।

(14) **मायातिपरया प्रबलेश्वरस्य, विमोहयत्येव समग्रजीवान्।**
विघ्नाननेकान् प्रतिस्थातुमीशा, सन्मार्गगान् कुपथगान् विदधाति नूनम्।।

भावार्थ – ईश्वर की यह माया अत्यन्त व्यापक व बलशाली है जो समस्त जीवों को अपने प्रभाव के द्वारा मोहित करती रहती है। वह स्वयं अनेक विघ्नों को प्रतिस्थापित करने में सक्षम है। वह सन्मार्गगामी पुरुषों को भी कुपथगामी बना दिया करती है अर्थात् सन्मार्ग से भ्रष्ट कर दिया करती है।

(15) इमं मर्त्यलोकं प्रविशन्ति येऽपि, मनुष्य योनावथवाऽन्य योनिषु।
सर्वेऽपि स्वैः स्वैः समुपार्जितैः फलैः, भोगान् वपुः स्थानु विहितानु हि भुज्जते।।

भावार्थ – जो कोई भी इस मृत्युलोक में मनुष्य योनि में अथवा अन्य योनियों में प्रवेश करते हैं, वे सब अपने–अपने द्वारा अर्जित कर्मफलों के द्वारा निर्धारित शरीर के निमित्त भोगों को निश्चित रूप से भोगा करते हैं।

(16) एतान्समस्तानघजान् हि दोषान्, निवारणायैव कृतप्रयत्वाः।
योगस्य मार्गमधिरूढमाणाः, भवन्ति सिद्धाः परिक्षीण किल्विषाः।।

भावार्थ – पाप बुद्धि से किये इन्हीं समस्त दोषों के निवारण के लिए ही योग मार्ग का अवलम्बन लेकर प्रयत्न किया करते हैं और ऐसे ही निरन्तर प्रयत्नशील मनुष्य ही पापों के सर्वथा क्षीण हो जाने पर सिद्ध पुरुष अथवा सिद्धयोगी के रूप में अवतरित होते हैं।

(17) एतज्जनुर्नो न हि मात्रमस्ति, भोगांस्तथाऽन्यान् विषयोपभुक्त्यै।
अभीष्टलक्ष्यं मनुजस्य योनौ, मुक्तिर्भवादीश युतिश्च पश्चात्।।

भावार्थ – हमारा यह मनुष्य जन्म मात्र भोगों तथा अन्यान्य विषयों के सेवन के लिए ही नहीं है। मनुष्य योनि में आकर हमारा जो अभीष्ट लक्ष्य है, वह है इस भव बन्धन से मुक्ति का और उसके पश्चात् उस परम सत्ता परमात्मा में युति (लय) हो जाने का।

(18) श्रेयस विधातुभलमस्ति योगः, अर्थौ हि द्वायेव यतश्च सिद्ध्यतः।
स्वस्मिन् स्थितौ 'स्वस्थ' इवानुभूयात्, युज्येत्ततः स्वस्मिन् सत्यरूपे।।

भावार्थ – यह योग का पथ ही कल्याण करने के लिए पर्याप्त है। इसी के द्वारा हमारे दोनों ही प्रयोजनों की सिद्धि हो जाती है। आत्मा में ही स्थिति सिद्ध होने पर स्वस्थ होने का अनुभव करे और उसके पश्चात् उस सत्यरूप परमात्म तत्व से स्वयं को जोड़ ले।

(19) किमस्ति योगः परमार्थ–चिन्तनम्, अष्टांग युक्तः – परमार्थसाधनम्।
महर्षिवर्येण पतंजलिनोदितम्, एकैकसूत्रं महदर्थव्यज्जकम्।।

भावार्थ – योग क्या है – परमार्थचिन्तन, आठ अंगों से युक्त – अष्टांग योग है – परमार्थ का साधन। यह महर्षि वर श्री पतंजलि द्वारा भाषित है जिसका एक–एक सूत्र महान् अर्थ की अभिव्यक्ति कर रहा है।

(20) पुनाति योगो बहिरन्तरश्च, यमेन नियमेन एदाचरेण।
करोति बलवद् दृढवासनैर्वयुः, योगाश्रयात् कान्ततनुः पुनः स्यात्।।

भावार्थ – यह योग ही यम, नियम और सदाचार के अवलम्बन द्वारा अन्दर और बाहर दोनों प्रकार से पवित्र करता है। दृढ़ वासनाओं से जकड़े इस शरीर को यह बलशाली बना देता है और योग के आश्रय से ही यह शरीर सुन्दर कान्तिमय हो जाता है।

(21) ततो योगमार्गे प्रथितस्तृतीयो, योगाङ्ग 'आसन' एव नामितः।
यर्त्सुष्ठुविधिना विहितस्तनोति, शरीर कान्तिं विपलुं बलञ्त।।

भावार्थ – योगमार्ग में यम और नियम दो अंगों के पश्चात् तीसरा अंग 'आसन' के नाम से ख्यात है। भली प्रकार से और विधिपूर्वक जिसे कर लेने पर वह शारीरिक सौन्दर्य और शारीरिक बल की वृद्धि प्रदान करता है।

(22) मरूत् समाहृत्य ततश्चतुर्थः, उदाहृतः 'प्राण+आयाम' – संज्ञः।
संयम्य प्राणान् भजते प्रवीणतां, योगी क्षमः स्यान्मनसस्तु निग्रहे।।

भावार्थ – प्राणवायु के समाहरण के द्वारा चौथा अंग 'प्राणायाम' नामक बतलाया गया है। प्राणों के नित्यप्रति विधिपूर्वक संयमन (पूरक, कुम्भक तथा रेचक की क्रियायें) करते हुए एक योगी इस योगमार्ग में दक्षता के साथ–साथ मनोनिग्रह का सामर्थ्य भी अनुभव कर लेता है।

(23) दशेन्दियाणां मनसस्वथा च, वशं निनायिषवे चिकीर्षवे।
अभ्यास–वैराग्य परायणाय, किं योगिने नास्ति महत्तरं तपः।।

भावार्थ – दसों इन्द्रियों तथा मन के वश में लाने वाले के तथा करने की इच्छा मन में बटोरे रहने वाले के लिए और निरन्तर अभ्यास तथा वैराग्य का अवलम्ब लिये हुए योगी की क्या यह महत्तर (बड़ी) तपस्या नहीं है।

(24) उपसर्गपूर्वः 'प्रति' शब्द एकः, संग्राह्य 'आहार' ततो द्वितीयः।
इदं पञ्चमाङ्गं विधिवत् विधाय, सर्वेन्द्रियेषु प्रभुरस्ति योगी।।

भावार्थ – पाँचवां योगाङ्ग है – 'प्रत्याहार'। यह शब्द 'प्रति' तथा 'आहार' शब्द के योग से बना है। 'प्रति' शब्द उपसर्गवाची है तथा 'आहार' प्रत्यय के रूप में होकर सन्धियुक्त शब्द 'प्रत्याहार' हुआ। इस प्रत्याहार क्रिया द्वारा एक साधक योगी इन्द्रियों पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया करता है।

(25) एके हि देशे विनिवेश्य चित्तं, संधार्णया कस्मिंश्चिदवीह वस्तुनि।
भवत्यतो योगपरायणस्तदा, चित्तं निजं 'धारणाङ्गे' प्रवीण:।।

भावार्थ – एक ही देश यानि स्थान विशेष में चित्त को लगाकर, अथवा किसी भी वस्तु विशेष पर ध्यान को केन्द्रित कर लेने पर एक योगनिष्ठ साधक अपने चित्त को 'धारणा' नामक अंग के द्वारा समाहित कर लेने में निपुण हो जाया करता है।

(26) तत: सप्तमाङ्गं च प्रविश्य योगी, एकैकतानेन निविष्टचेतसा।
इष्टं स्वरूपं परिचिन्तयन्स:, ध्यानप्रवीणोऽपि द्रुतं भवत्युत।।

भावार्थ – इसके पश्चात् योग के सप्तम अंग 'ध्यान' के द्वारा, जिसमें एकात्मक हो अपने चित्त को लगाता रहता है। अपने इष्ट स्वरूप को ध्यानगत करते रहने से वह साधक योगी 'ध्यान' अंग में भी शीघ्र प्रवेश कर प्रवीण हो जाता है।

(27) तत: समाधिर मिधी यतेऽष्टमं, अंङ्ग च योगस्य तदुत्तमा स्थिति:।
संप्राप्य तां धन्य तमोऽस्ति योगी, केचिद्धि विरला समनुव्रजन्ति।।

भावार्थ – इसके पश्चात् आता है 'समाधि' नामक आठवाँ अंग – यही इस अष्टांग योगी की चरम व उत्तम परिणति है। इसको प्राप्त कर एक योगनिष्ठ साधक धन्यतम व कृतकृत्यता का अनुभव कर सकता है। बहुत ही विरले साधक इस उच्च स्थिति तक पहुंच पाते हैं।

(28) अनूप्य मे वास्ति मनश्चलत्वम्, तद् वृत्तिरोधस्य च दुष्करत्वम्।
अभ्यसि वैराग्य द्वथो र्वशित्वम्, एतद्धि योगस्य परं फलत्वम्।।

भावार्थ – मन की चंचलता तो अनुपमेय ही है और उसकी वृत्तियों को रोकने का कार्य कितना दुष्कर है। केवल सतत् अभ्यास तथा वैराग्य वृत्ति द्वारा ही इनका नियन्त्रण सम्भव है और यही 'योग' का परम फल है।

(29) तथापि योगेऽभिरुचि: प्रवृत्ति:, प्राग्जन्म संस्कारवशाद्धि जायते।
तदैव सान्निध्यमपि सद्गुरो: स्यात्, पुण्योदयाद् भाग्यवशाच्च सर्वम्।।

भावार्थ – ऐसा सब कुछ होते भी पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण ही योगपथ पर अनुसरण की अभिरुचि तथा प्रवृत्ति हो पाती है और तभी सद्गुरुचरणों की सन्निधि भी संभव होती है। यह सब पुण्योदय और भाग्योदय के पश्चात् ही होता है।

(30) यद्दुर्लभं प्राप्यमिहास्ति कर्मभि:, संस्कारपूर्वैश्च निधि: सुलभ्या।
ततः परं सिद्धगुरो: कृपा च, किं प्राप्यशेषं वद शेषते परम्।।

भावार्थ – अपने ही कर्मो के द्वारा (संचित पूर्व कर्मो द्वारा) दुर्लभभी सुलभ होता है। अपने पूर्व जन्मोपार्जित संस्कारों द्वारा यह योग का खजाना भी सुलभ हो पाता है। इसके बाद सिद्धगुरुवर की कृपा की प्राप्ति हो तो बताओ प्राप्त करने के लिए और क्या बचता है।

(31) श्रीमद् गुरुणां परमा कृपास्ति, मन्त्रार्पितं यैर्निज शिष्यवर्गे।
मुखारविन्दान्निस्सृता च या वाक्, पायादपायादुक्ष्याय भूयात्।।

भावार्थ – हम सब पर सिद्धगुरुवर की परमा कृपा रही है और सर्वदा रहती भी है। सद्गुरु द्वारा अपने शिष्यवर्ग के मध्य अपने श्री मुखारविन्द से जो वाणी प्राप्त हुई है और रहती है वह हम सबकी अनिष्ट तत्वों से सर्वदा रक्षा करती रहे और हमारे अभ्युत्थान व नि:श्रेयस् का मार्ग प्रशस्त करे, यही मन: कामना है। जय–जय श्री गुरुदेव।

●●●

जो मनुष्य इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, उसे एक ही जन्म में हजारों वर्ष का काम करना पड़ेगा। वह जिस युग में जन्मा है उससे उसे बहुत आगे जाना पड़ेगा, किन्तु साधारण लोग किसी तरह रेंगते–रेंगते ही आगे बढ़ सकते हैं। जो महापुरुष प्रचार–कार्य के लिए अपना जीवन समर्पित कर देते हैं, वे उन महापुरुषों की तुलना में अपेक्षाकृत अपूर्ण हैं जो मौन रहकर पवित्र जीवनयापन करते हैं और श्रेष्ठ विचारों का चिन्तन करते हुए जगत् को सहायता करते हैं। इन सभी महापुरुषों में एक के बाद दूसरे का आविर्भाव होता है – अंत में उनकी शक्ति का चरम फलस्वरूप ऐसा कोई शक्तिसम्पन्न पुरुष आवभूर्त होता है जो जगत् को शिक्षा प्रदान करता है।

– स्वामी विवेकानन्द

धारणा-ध्यान-समाधि व तज्जन्य सिद्धियाँ

लेखिका – डॉ. राजकुमारी त्रिखा, जनकपुरी, नई दिल्ली

(गतांक से आगे)

इन चारों समाधियों में से प्रथम वितर्कानुगत समाधि वितर्क, विचार, आनन्द व अस्मिता चारों से युक्त है। विचारानुगत, विचार, आनन्द व अस्मिता इन तीनों से युक्त है। आनन्दानुगत आनन्द व अस्मिता दोनों से युक्त है तथा अस्मितानुगत केवल एकानुगत अर्थात् अस्मिता से ही युक्त है। कथन का तात्पर्य यह है कि प्रकृति से महत् की उत्पत्ति हुई है। महत् से अहंकार की, अहंकार से इन्द्रियों तथा तन्मात्राओं की, व तन्मात्राओं से स्थूल पंचमहाभूतों की। अतः स्थूल पंचमहाभूतों (वितर्कानुगत) का ध्यान करने पर चारों की भावना प्राप्त हो जाती है। पंचतन्मात्राओं (विचारानुगत) का ध्यान करने पर स्थूल पंचमहाभूतों का ध्यान नहीं रहता, अतः वितर्क को छोड़कर शेष तीनों की भावना समाहित रहती है। अहंकार का साक्षात्कार (आनन्दानुगत) होने पर सूक्ष्म व स्थूल पंचमहाभूतों का भान ही नहीं रहता है अतः इसमें वितर्क व विचार नहीं रहते। इसी प्रकार अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि में पूर्ववर्ती अवस्थायें नहीं रहतीं।

ये चार प्रकार की (वितर्क, विचार, आनन्द व अस्मिता नामक) सम्प्रज्ञात समाधियां हैं। असम्प्रज्ञात समाधि अस्मितानुगत के बाद की अवस्था है। इसमें भी चित्तवृत्तियां विलीन हो जाती हैं। यह संस्कार शेष अवस्था है। इसमें पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित रहता है। इसे ही निर्बीज समाधि भी कहते हैं क्योंकि इसमें अविद्या आदि क्लेश युक्त कर्माशय भी नष्ट हो जाता है।

यह असम्प्रज्ञात समाधि भी दो प्रकार की है। उपाय प्रत्यय व भवप्रत्यय। उपाय प्रत्यय के अनुसार साधना करते–करते व्यक्ति कालान्तर में स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करके भवप्रत्यय योगी बन जाते हैं। श्रद्धा, वीर्य, स्मृति व समाधि इसके साधन हैं।

भवप्रत्यय योगियों को पूर्वार्जित पुण्य के प्रभाव से जन्म लेते ही योगप्रतीति होने लगती है। पतञ्जलि कहते हैं – विदेह तथा प्रकृतिलीन योगियों को भवप्रत्यय समाधि प्राप्त होती है। जिन योगियों को आनन्दानुगत समाधि प्राप्त हो जाती है और विशुद्ध सत्व के भावों को अनुभव करते हुए वे लोग अपने आपको लय कर डालते हैं, उनको देहधर्मों का आभास ही नहीं रहता। ऐसे योगी 'विदेह' कहलाते हैं। इसी प्रकार जो योगी अभ्यास करते–करते प्रकृतिलीन हो जाते हैं, वे मूल प्रकृति में ही अतिशय आनन्द का अनुभव करते हैं। उन्हें कैवल्य प्राप्ति न होने के कारण जन्म ग्रहण करना पड़ता है। परन्तु पूर्वजन्मों के योगाभ्यास के पुण्यस्वरूप उन्हें जन्म लेते ही योग की प्रतीति आरम्भ हो जाती है। ऐसे प्रकृतिलीन योगी भवप्रत्यय योगी हैं।

असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति का क्रम – अष्टांगयोग के अन्तिम सोपान असम्प्रज्ञात अथवा निर्बीज समाधि तक पहुँचने के लिए अनेक अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। सर्वप्रथम तो पूर्वचर्चित यम नियमादि के अभ्यास से चित्त की अशुद्धि दूर करनी होती है। आसनों व प्राणायाम के अभ्यास से शारीरिक शक्ति व स्फूर्ति में वृद्धि तथा नाड़ी शुद्धि हो जाती है। विवेकज्ञान को आवृत्त करने वाले कर्मों का क्षय हो जाता है। इससे मन धारणा ध्यानादि के योग्य बनता है। प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियनिग्रह हो जाता है। फिर धारणा व ध्यान द्वारा लक्ष्य विशेष पर चित्त केन्द्रित करते हैं। वितर्क व विचारानुगत सम्प्रज्ञातसमाधि में पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रा, पंच इन्द्रियों का साक्षात्कार करके योगी निर्विचार सम्प्रज्ञातावस्था में पहुँचता है, तो रजस् व तमस् रूपी अशुद्धि का नाश होने के कारण, व सत्वगुण की प्रधानता के कारण, प्रकाशस्वरूप बुद्धि का रजस् व तमस् से अभिभूत न होने वाला स्वच्छ स्थिरता रूपी प्रवाह चलता रहता है। इसी को योगसूत्रकार ने वैशारद्य कहा है। निर्विचार समाधि के वैशारद्य (निर्मलता) को प्राप्त करने के बाद मनुष्य को अध्यात्मप्रसाद प्राप्त होता है। इसे ही प्रज्ञाप्रसाद या स्फुटप्रज्ञालोक भी कहते हैं। अध्यात्मप्रसाद पाने के पश्चात् योगी को ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है। यह प्रज्ञा केवल ऋत को ही धारणा करती है। इसमें भ्रान्ति विपर्यय अथवा अज्ञान का कोई स्थान नहीं होता। इस प्रज्ञा द्वारा ही सूक्ष्म विषयों पर संयम करने से उनका वास्तविक स्वरूप जाना जाता है। इस प्रज्ञा से उत्पन्न होने वाला संस्कार, व्युत्थान के संस्कारों को रोकने वाला होता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के निरोध से संस्कार पुष्ट होते हैं तथा निरोध के संस्कारों की पुष्टि से ऋतम्भरा प्रज्ञा का प्रकर्ष होता है। यह चक्र चलता रहता है। अन्त में निरोध के संस्कारों के द्वारा व्युत्थान संस्कार पूर्णरूपेण नष्ट हो जाते हैं। परवैराग्य के द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा के संस्कार भी नष्ट हो जाते हैं। फिर असम्प्रज्ञात अथवा निर्बीज समाधि की प्राप्ति होती है। पुरुष अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित रहता है। प्रकृतिपुरुष विषयक विवेकज्ञान के कारण गुणों में वितृष्णा हो जाती है। यही ज्ञान की चरम व अन्तिम सीमा है। कैवल्य इससे दूर नहीं है। इस समाधि की प्राप्ति का साधन परवैराग्य है। परवैराग्य की प्राप्ति भी कठिनता से होती है। क्रम से स्थित पंचमहाभूत इत्यादि के रूप का वास्तविक ज्ञान पाकर योगी को इन तत्वों में वितृष्णा हो जाती है तथा प्रकृति व पुरुष की भिन्नता का अनुभव होता है। यही ज्ञान विवेकख्याति है और जब विवेकख्याति कालान्तर में स्थायी व दृढ़ीभूत हो जाती है, तब उसे धर्ममेघसमाधि कहते हैं यह समाधि अशुक्ल व अकृष्ण कर्मों को बरसाती है तथा यही कैवल्य देने वाली है इसी धर्ममेघसमाधि की पराकाष्ठा पर वैराग्य है। इसे ही ज्ञान प्रसाद भी कहते हैं। इसका फल असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति है।

इस प्रकार योगदर्शन के अनुसार समाधि असम्प्रज्ञात व सम्प्रज्ञात भेद से दो प्रकार की है। असम्प्रज्ञात के फिर दो भेद हैं – उपाय प्रत्यय व भव प्रत्यय। सम्प्रज्ञात के चार भेद हैं – वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत व अस्मितानुगत। असम्प्रज्ञात अथवा निर्बीज समाधि की प्राप्ति मानवजीवन का चरमलक्ष्य है जिसे पाकर प्राणी फिर से भवसागर में गोते नहीं

लगाता।

(ग)

धारणा–ध्यान–समाधि–साधना–जन्य सिद्धियाँ

पूर्वविवेचन से स्पष्ट हो गया है कि धारणा के परिपक्व होने पर ध्यान की स्थिति प्राप्त होती है तथा प्रगाढ़ ध्यान की स्थिति के पश्चात् समाधि की अवस्था आती है। सम्प्रज्ञात समाधि में प्रगति होने पर चित्त की एकाग्रता की क्षमता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है तथा साधक की समाधि–स्थिति निर्मल होती जाती है। उसे प्रकृतिपर्यन्त सब सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थ शीशे के समान चमकते हुए दिखाई देने लगते हैं। इस स्थिति में योगी निश्चिन्त होकर सांसारिक प्रवाह में बहने वाले प्राणियों को इस प्रकार देखता है, जिस प्रकार पर्वत पर खड़ा मनुष्य अपने से नीचे, भूमि पर स्थित प्राणियों को देखता है। महाभारत में इसी भाव की पुष्टि करते हुए कहा गया है जिस प्रकार पर्वत पर चढ़ा हुआ व्यक्ति पृथ्वी पर स्थित प्राणियों को केवल देखता है, उनकी परिस्थिति से प्रभावित नहीं होता, उसी प्रकार बुद्धिरूपी अट्टालिका पर चढ़ा हुआ मनुष्य, उन शोकग्रस्त मन्दबुद्धि लोगों को देखता है, परन्तु उनके समान दुःखी नहीं होता।

इस स्थिति में योगी केवल सत्य का ही दर्शन करता है। एकाग्रतापूर्वक वह जिस विषय पर भी संयम (धारणाध्यानसमाधि तीनों का एकत्रीकरण) करता है, उसी वस्तु को प्राप्त कर सकता है, जो चाहे वह कर सकता है। प्रकृति का कोई भी तत्व उसके लिए अज्ञात नहीं रहता। विषयों की अनन्तता के कारण योगी को अनन्त विभूतियां प्राप्त होती हैं, अतः कहा गया है – **नास्ति योगसमं बलम्।** अर्थात् योगशक्ति के तुल्य अन्य कोई शक्ति नहीं है। परकाय प्रवेश, दूर–दर्शन, दूर–श्रवण, सम्पूर्ण भुवनों का ज्ञान, अन्तर्ध्यान होना, अणिमा, गरिमा आदि अष्टविध योगसिद्धियाँ, पूर्वजन्मों का ज्ञान, परचित्तज्ञान, हाथी के समान बल की प्राप्ति, शरीरस्थ विविध नाड़ियों में संयम द्वारा विविध सिद्धियों की प्राप्ति, भूख–प्यास पर विजय, रूप बदलना आदि अनेक शक्तियाँ सम्प्रज्ञात समाधि का साक्षात्कार करके उसी में लीन रहने वाले योगी एक सौ मन्वन्तरों तक; अहंकार तत्व का साक्षात्कार करके, उसी में लीन रहने वाले योगी एक सहस्र मन्वन्तरों तक; बुद्धि तत्व का साक्षात्कार करने वाले योगी, दस सहस्र मन्वन्तरों तक, कैवल्य के समान सुख का अनुभव करते हैं, परन्तु निर्गुण पुरुष का साक्षात्कार होने के पश्चात् योगी सदा–सदा कैवल्य का सुख भोगता है।

इससे संकेत प्राप्त होता है कि सभी योगी कैवल्य तक नहीं पहुँच पाते। कुछ साधना के बीच में ही रुक जाते हैं, तो कुछ का शरीरपात हो जाता है। चाहे योगसाधना में बहुत अधिक प्रगति न हो पाये, तो भी योगसाधना का विलक्षण लाभ व प्रभाव होता है।

योगाभ्यास का शरीर व मन पर प्रभाव –

योगाभ्यास का शरीर व मन पर अनुकूल व विलक्षण प्रभाव पड़ता है। सर्वप्रथम तो मानसिक अशान्ति व उद्विग्नता नष्ट हो जाती है व साधक को दिव्य शान्ति की अनुभूति होती है।

श्री भीष्मपितामह युधिष्ठिर को योग का उपदेश करते हुए कहते हैं – ध्यानयोगी पाँचों इन्द्रियों के समुदाय तथा मन को स्वयं ही पहले ध्यानमार्ग में स्थापित करके प्रतिदिन किये हुए योगाभ्यास द्वारा शान्ति प्राप्त करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण भी कहते हैं – हे अर्जुन ध्यान परायण योगी मुझमें रहने वाली परमानन्द की पराकाष्ठा रूपी शान्ति को प्राप्त करता है।

मन में शान्ति होने पर ही मानव सुखी होता है। योगी भी शान्ति पाकर अपूर्व सुख का अनुभव करता है। यह वह अनिर्वचनीय आनन्द है, जिसे पाकर योगी कृतकृत्य हो जाता है। भीष्म पितामह युधिष्ठिर को योगोपदेश देते हुए कहते हैं – 'इस प्रकार मन पर संयम करके ध्यानाभ्यास करने वाले योगी को जो परम सुख प्राप्त होता है, वह किसी भी अन्य पुरुषार्थ से अथवा भाग्य द्वारा प्राप्त नहीं होता। उस परम सुख से संयुक्त होने के कारण, योगी का ध्यानसाधना में अनुराग उत्तरोत्तर क्रमशः बढ़ता जाता है तथा इस प्रकार योगी दुःख व शोक से रहित होकर निर्वाण प्राप्त करते हैं।' आश्वमेधिक पर्व में भी योगियों के योगसाधना प्राप्त आनन्द को अनिर्वचनीय व अखण्ड आनन्द कहा गया है।

इस प्रकार योगसाधनामार्ग में स्थित योगी को साधना के प्रत्येक चरण में धारणा ध्यान व समाधि का फल प्राप्त होता है। प्रारम्भिक स्थिति में शरीर स्वस्थ, व मन शान्त होता है। अद्भुत आनन्द की प्राप्ति होती है। जैसे–जैसे साधना में प्रगति होती है, साधक योग की उच्चतर भूमिकाओं में आरूढ़ होता जाता है, तथा उसे अनेक दिव्य अनुभूतियाँ होती हैं।

इस विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि पतंजलिरचित योगसूत्रों में धारणा के लक्ष्यों का स्पष्ट रूप से परिगणन नहीं किया गया है। परन्तु विविधसंयमों तथा उनसे प्राप्त होने वाले फलों के वर्णन से यह संकेत मिलता है कि पतंजलि के समय में इन लक्ष्यों पर धारणा ध्यान समाधि व संयम का अभ्यास किया जाता था।

महाभारत में व्यासभाष्य में उल्लिखित तथा योगसूत्रों में संकेतित धारणालक्ष्यों का विधान तो किया ही गया है, साथ ही अन्य अनेक धारणालक्ष्यों का भी प्रतिपादन किया गया है – यथा, दाँत, तालु, पार्श्वभाग, नेत्र, कान इत्यादि। इस दृष्टि से महाभारत पातञ्जल योगसूत्रों का भी अतिक्रमण कर गया है।

यहाँ यह अवधेय है कि योगसूत्रों में ध्यान व समाधि का विशद विवेचन प्राप्त होता है। परन्तु महाभारत में चित्त की एकाग्रता की प्रगाढ़ताजन्य धारणा ध्यान व समाधि के अन्तर पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है। फलस्वरूप पतञ्जलि वर्णित वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि को पंचमहाभूतों की धारणा तथा विचारानुगत आनन्दानुगत व अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि को प्रधारणा कहा है। एकाग्र मन से धारणा ध्यान व समाधि के अभ्यास करने की विधि व तज्जन्य विविध फलों का विस्तृत वर्णन भी महाभारत में पाया जाता है।

●●●

अष्टांगयोग (अन्तरंग साधना)

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

अष्टांगयोग की बहिरंग साधना से अन्तरंग साधना के लिए भूमि तैयार होती है। मन अत्यन्त शक्तिशाली तथा चंचल स्वभाव का है तथा सहजरूप में इन्द्रियों का अनुगमन करता है। मन पर संयम करने के लिए विवेकजन्य वैराग्य तथा निरन्तर एवं चिरकाल तक धैर्ययुक्त होकर अन्तरंग साधना की आवश्यकता होती है। अन्तरंग साधना के तीन अंग हैं, (1) धारणा, (2) ध्यान, (3) समाधि। धारणा योग का प्रवेश–द्वार है। यहीं से मन की एकाग्रता की साधना आरम्भ होती है और चित्त में नवीन परिणाम अनुभव में आते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने भी स्वीकार किया कि मन पर नियन्त्रण करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुं उपायतः।।

(गीता 6/35,36)

अर्थात् हे अर्जुन यह मन अत्यधिक चंचल, शक्तिवान है तथा इस पर पूर्ण नियन्त्रण कठिन है, तथापि दीर्घकालीन अभ्यास तथा वैराग्य की साधना से ही संयमित हो सकता है। असंयमी साधक इस पर नियन्त्रण नहीं कर सकते, जिनकी बुद्धि विशुद्ध तथा बलशाली है वही यत्नपूर्वक गुरुदेव की कृपा से इसे अपने वश में कर सकते हैं। यह साधना धारणा से आरम्भ होती है। धारणा की परिभाषा है –

''देशबन्धश्च चित्तस्य धारणा''

(योगदर्शन 3/1)

अर्थात् चित्त को किसी एक संकल्पवृत्ति पर बाँधकर रखना ''धारणा'' है। मन का स्वभाव संकल्प करना है और वह जो भी संकल्प करता है। बुद्धि स्वभावतः उसे तुरन्त ग्रहण करती है और वही संकल्प चित्त में प्रकाशित होता है। मन की गति प्रकाश की गति से भी अधिकतर है। यदि मन पर ऐसा नियन्त्रण हो जाय कि उदय होने वाला संकल्प तथा अस्त होने वाला संकल्प एक ही बना रहे जिससे चित्त में वही प्रकाशित होता रहे तब इसे धारणा अथवा चित्त का एकाग्रता परिणाम कहा जाता है।

''शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्य एकाग्रतापरिणामः।।''

(योगदर्शन 3/12)

अर्थात् जब चित्त में शान्त होने वाले तथा उदित होने वाले प्रत्यय एक ही हो जाते हैं, तब उसे चित्त का एंकाग्रतापरिणाम कहा जाता है। चित्त की यह स्थिति कठिनता से चिरकालीन अभ्यास से आती है जबकि काम–क्रोध के विकार क्षीण हो जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से इसे स्पष्ट कर दिया है कि –

काम एषः क्रोध एषः रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धिः एनं हि वैरिणम्।।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः अस्यधिष्ठानमुच्यते।
एतैः विमोहयत्येषः ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य यः आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

(गीता 3/5,6,37,40)

अर्थात् परमात्मा की यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है, अतः रजोगुण से उत्पन्न काम तथा क्रोध के बुद्धि में विकार तथा तमोगुण से उत्पन्न अविद्या तथा प्रमाद एवं मोह इतने शक्तिशाली हैं कि न तो कभी उनकी तृप्ति होती है और न पापकर्मों से निवृत्ति। मायाजनित मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ इन विकारों की आश्रय हैं जिनके माध्यम से प्रत्येक जीवात्मा पाप–पुण्यों के कर्म करने के लिए विवश है क्योंकि जीवात्मा का स्वरूप ही बुद्धिबोधात्मक है अतः जैसी बुद्धि की सम्वेदना होती है, वही जीवात्मा का संकल्प तथा कर्म होता है और यह दोनों संकल्प तथा कर्म पंचक्लेशों से प्रेरित होते हैं और जीवात्मा को गुणबन्धन तथा कर्मबन्धन में बाँधकर रखते हैं। इनसे मुक्ति पाने के लिए शास्त्रों का स्पष्ट आदेश है कि –

यस्तु इन्द्रियाणि मनसा नियम्य आरभते अजुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगं असक्तः सः विशिष्यते।।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो हि आचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।।

अनादिसम्बंधवत्या क्षेत्रज्ञोऽयं अविद्यया।
युक्तः पश्यति भेदेन ब्रह्मतत्वमात्मनि संस्थितम्।।

आत्मा क्षेत्रज्ञसंज्ञोऽयं संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तैरिव विगतः शुद्धः परमात्मा निगद्यते।।

अर्थात् जो कर्मफलासक्ति त्याग कर मन के द्वारा इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर कर्मयोगी की साधना करते हैं, वही जीव इस मायिक बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। इसलिए सदैव निरासक्त होकर अपने कर्तव्यों का पालन करो, क्योंकि यही कर्मयोग की साधना है जिसके पालन से धारणा, ध्यान तथा समाधि की योग्यता प्राप्त होगी, अन्यथा अविद्या माया का यह बन्धन अनादिकाल से जीवात्मा को अपने मायापाश में बाँधे हुए है, इसीलिए प्रत्येक जीव को जन्म लेते ही मृत्यु का भय जकड़ लेता है। इसका स्पष्ट कारण है आत्मा की मायाजनित मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के साथ एकात्मता। जैसे ही योगसिद्धि के द्वारा इसका भेदज्ञान यानि एकात्मता की भ्रान्ति का नाश होता है वैसे ही परमात्मस्वरूप की प्राप्ति हो जाती है। यहाँ पर यह समझना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि योगसिद्धि से पूर्वकाल में कोई भी जीव कर्म करने के लिए बाध्य है, क्योंकि उसके लिए एक क्षण भी अकर्मी रहना सम्भव ही नहीं है। इसका स्पष्ट कारण है गुणों की पराधीनता तथा –

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।

(गीता 3/27)

अर्थात् यथार्थतः सभी कर्म प्रकृति के गुणों के द्वारा किये जाते हैं किन्तु गुणजन्य बुद्धि के साथ एकात्मता के कारण जीवात्मा अपने को कर्ता मानकर कर्मफल भोगने के लिए विवश है। यदि कोई अज्ञानवश अपने भ्रान्तिजन्य अहंकार से कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण करे किन्तु अनियन्त्रित मन से इन्द्रियभोगों का चिन्तन करता रहे तब यह मिथ्याचार होगा। मिथ्याचारी के लिए योग में प्रवेश असम्भव है। जो साधक कर्मयोग का पालन करते हुए धारणा का अभ्यास करते हैं वह शनैः शनैः अन्तर्मुखी हो जाते हैं और तब धारणा ध्यान में बदल जाती है। ध्यान की परिभाषा है कि –

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।।"

(योगदर्शन 3/2)

अर्थात् जिस प्रत्यय यानि मन के संकल्प पर धारणा की गयी है उसी प्रत्यय का तैलधारा के समान निरन्तर चित्त में प्रकाशित रहना ध्यान कहलाता है। इस प्रक्रिया में ध्येय

वस्तु के अंगप्रत्यंग का हमारी सूक्ष्म इन्द्रियाँ प्रत्यक्ष अनुभव करती हैं। जब साधक का ध्यान पुष्ट हो जाता है तब –

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी।।

(योगदर्शन 1/35)

अर्थात् ध्येयाकार वृत्ति के उत्पन्न होने से साधक का चित्त ध्येयाकार होकर प्रकाशित रहता है और तब मन की एकाग्रता की स्थिति परिपुष्ट हो जाती है और साधक को अपने संकल्प का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। इस सत्य को जानकर साधक का योग में विश्वास तथा श्रद्धा दृढ़ हो जाती है जिसे निश्चयात्मिका बुद्धि कहते हैं। चित्त की इस स्थिति को समझने के लिए एक उदाहरण देते हैं कि यदि चित्त को थ्येटर का पर्दा माना जाय, मन को प्रोजैक्टर मानाया जाय, संकल्पवृत्तियों को प्रोजैक्टर में लगी रील की फिल्में माना जाय तो आत्मशक्ति से चालित मन से आत्मप्रकाश की किरणों के माध्यम से चित्तरूपी पर्दे पर वृत्तियों द्वारा सृजित संसार दिखाई देता है, दृष्टा बुद्धिबोधात्मक आत्मा है। जब मनरूपी प्रोजेक्टर एकाग्रता परिणम में स्थिर हो जाता है तब एक ही वृत्तिरूपी फिल्म चित्तरूपी पर्दे पर प्रकाशित रहती है। यही ध्यान है। धारणा तथा ध्यान में ध्याता, ध्येय तथा उनकी प्रक्रिया इन तीनों का पृथक अस्तित्व बना रहता है। ध्याता को ध्येय का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता है, किन्तु यह ज्ञानलाभ उन्हीं को सम्भव है जिनका एकाग्रचित्त है, अन्यथा –

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिःसमाधौ न विधीयते।।

(गीता 2/44)

अर्थात् जिनका मन विषयभोगों में आसक्त है उनकी बुद्धि चंचल मन की भावनाओं का अनुगमन करती है अतः चित्त में एकाग्रतापरिणाम नहीं ला सकती। एकाग्र चित्त ही समाधि में प्रवेश करता है। समाधि की परिभाषा है कि –

''तदेवार्थमात्रनिर्भास स्वरूपशून्यमिव समाधिः।।''

(योगदर्शन 3/3)

अर्थात् जब ध्यान की प्रक्रिया में केवल ध्येयमात्र प्रकाशित होता रहे तथा चित्त का अपना स्वरूप लुप्त हो जाय यानि तीनों ध्याता, ध्यान तथा ध्येय की एकीकारिता हो जाय तब चित्त की इस स्थिति को समाधि कहा जाता है। समाधि में ध्याता स्वयं ध्येयाकार होकर ध्येय के सम्पूर्ण रहस्यों का ज्ञाता बन जाता है। चित्त की इस स्थिति को समाधिपरिणाम कहा जाता है। इसकी परिभाषा है –

''सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः।।''

(योगदर्शन 3/11)

अर्थात् जब चित्त में समस्त विकल्पों का क्षय हो जाता है और एकाग्रता का उदय हो जाता है यानि ध्येयवृत्ति के अतिरिक्त अन्य सभी विकल्पवृत्तियों का अभाव हो जाता है तब ध्येयाकार ध्याता केवल ध्येय का सम्पूर्ण ज्ञाता रहता है। इस चित्त की अवस्था को "समाधिपरिणाम" कहते हैं। चित्त की इस अवस्था को प्राप्त करने में अनन्त अवरोध हैं। सबसे बड़ा अवरोध है भ्रान्तिज्ञान यानि अज्ञान तथा अज्ञानजनित कर्मबन्धन। इस कर्मबन्धन के कारण जन्म–मृत्यु तथा अनेक योनियों के दुःख भोगना अनिवार्य हो जाता है और अज्ञान के वशीभूत कर्माशय के कोष में वृद्धि भी अनिवार्य है। इस विषम परिस्थिति से मुक्ति हमारी बुद्धि की क्षमता से बाहर है। मुक्ति का एकमात्र उपाय समर्पण भक्ति है जिसका वर्णन हम भक्तियोग में कर चुके हैं। कामासक्त मन भक्ति भी नहीं कर सकता। तब करें तो क्या करें? मुझे तो एक ही उपाय समझ में आता है कि गीता के रूप में परमात्मा की वाणी पर विश्वास करें, मनन करें तथा भगवान श्रीकृष्ण के बताये मार्ग पर चलें।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैवात्मनः बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः।।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मासमाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्तः इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।।

अर्थात् भ्रान्तिजन्य दुःखों से तथा मायाजन्य बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए अपने आप से अपना कल्याण करना चाहिए न कि अपना पतन। हम स्वयं ही अपने मित्र हैं और स्वयं ही अपने शत्रु। इसका तात्पर्य यह है कि हमारे शरीर में आत्मा के दो रूप हैं एक तो वह जो मायिक विकारों से मुक्त शुद्ध दृष्टामात्र है तथा दूसरी वह जो बुद्धिबोधात्मिका है यानि बुद्धिगत भावनाओं से प्रभावित रहती है। जब दूसरा कल्पित रूप प्रथम शुद्ध रूप के नियन्त्रण में कार्य करती है तब वह मित्र है और जब मन–बुद्धि का ही अनुगमन करती है तब वह शत्रु है, क्योंकि दुःखों का निमित्त कारण रहती है। नियंत्रित आत्मा शान्त तथा परमात्मस्वरूप में समाहित रहने के कारण मायिक बन्धनों से मुक्त, परमात्मस्वरूप के परमानन्द में तृप्त दृष्टा के रूप में स्वतन्त्र शुद्धमुक्तस्वभाव में रहने के कारण युक्तयोगी कहलाती है। युक्तयोगी का स्वरूप ही परमात्मा

है। यही वेदशास्त्र का निष्कर्ष है कि –

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे वृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
प्रथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टः ततः तेन अमृतत्वमेति।।
तादृक् भवति विज्ञप्ति यादृशी खलु भावना।
क्षये तस्याः परं ब्रह्म स्वयमेव प्रकाशते।।

अर्थात् जब तक अविद्या के अन्धकार में आत्मा पर आरोपित यानि विकल्पित जीवात्मा अपने को आत्मा से भिन्न मानकर अल्पज्ञ, शरीरधारी तथा लौकिक दुःखों से आक्रान्त रहती है तब तक उसे अपने सर्वव्यापक, सर्वाधार तथा निराकार स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। इसका मुख्य कारण है चित्त में चित्तवृत्तियों का प्रकाशित रहना। इन चित्तवृत्तियों पर निरोधरूपी अंकुश लगाकर चित्त के शुद्धिकरण का परिणाम बताया है कि जीवात्मा अपने जीवभाव को त्यागकर परमात्मभाव में प्रवेश करता है –

बुद्धया विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन् विषयान् त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।।

विविक्तसेवी लध्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यंसमुपाश्रितः।।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चस्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।

(गीता 18/51–55)

अर्थात् चित्तवृत्तियों के निरोध के अभ्यास से अन्तःकरण शुद्ध होता जाता है। अन्तःकरण मन तथा बुद्धि का कार्यक्षेत्र है, अतः बुद्धि में रजोगुणी तथा तमोगुणी वृत्तियों के दमन से सतोगुणी वृत्तियाँ रह जाती हैं। सतोगुण प्रकाशस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप होने से बुद्धि के मायिक विकारों जैसे काम, क्रोध, मोहादि का नाश करता है जिससे बुद्धि की शुद्धता बढ़ती

जाती है। शुद्ध बुद्धि निर्मल जल के समान है जिसमें परमात्मा का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देने लगता है। शास्त्र इसकी पुष्टि करते हैं कि –

सत्वं विशुद्धं जलवत्तथापि।
ताभ्यां मिलित्वा सरणाय कल्पते।।
यत्रात्मबिम्बः प्रतिबिम्बितः सन्।
स सदानन्दरसं समृच्छते।।

अर्थात् शुद्ध सतोगुण निर्मल जल के समान है, तथापि रजोगुण तथा तमोगुण की कीचड़ से कर्मबन्धन में जीवात्मा को भ्रमित रखता है किन्तु इस कीचड़ के हट जाने से विशुद्ध बुद्धि में आत्मबिम्ब दिखाई देने लगता है। अतः विशुद्ध बुद्धि से युक्त होकर जब साधक चित्त पर नियन्त्रण करने लगता है, शब्दादि विषयों के रसास्वादन को त्यागकर उनमें आसक्ति रूप रागद्वेषों के विकारों से बुद्धि को मुक्त कर लेता है, एकान्त स्थान में निर्विघ्न होकर निराहारी वृत का पालन करते हुए ध्यान तथा समाधि के अभ्यास से चित्तवृत्तियों पर अंकुश लगाकर चित्त को निर्मल बनाता है, इन्द्रियों को अपने–अपने विषयों के आकर्षण से मुक्त कर अहंकार, शक्ति का अभिमान, काम, क्रोध तथा सांसारिक पदार्थों में आसक्ति को त्यागकर परम शान्तचित्त होकर समाधिस्थ हो जाता है, तब वह साधक परमात्मदर्शन तथा परमानन्द पाने का अधिकारी हो जाता है। ध्यान–समाधि के द्वारा माया का भ्रान्तिजन्य खेल समझ में आने लगता है। माया के आकर्षणों से मुक्त होकर परमात्मभाव में अक्षय आत्मानन्द का अनुभव कर सदैव प्रसन्नचित्त हो जाता है। कामनाओं तथा लौकिक दुःखों से मुक्ति पाने के बाद साधक को स्वतः सर्वात्मा परम ब्रह्म में अनन्यभक्ति का लाभ प्राप्त हो जाता है। परमात्मा में अनन्यभक्ति के द्वारा सभी मायिक बन्धन टूट जाते हैं और परमात्मभाव की प्राप्ति हो जाती है। परमात्मभाव प्राप्त होने के बाद साधक कृतार्थ हो जाता है। कृतार्थता ही मानवजीवन का परम लक्ष्य है जिसका लक्षण है कि –

सर्वैः विकल्पैः हीनस्तु शुद्धो बुद्धोऽजरोऽमरः।
प्रशान्तो व्योमवत् व्यापी चैतन्यात्मासकृत्प्रभः।।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि सः योगी मयि वर्तते।।

यथोदकं शुद्धे शुद्धं आसक्तिं तादृक इव भवति।
एवं मुनेः विजानतः आत्मा भवति गोतम।।

अर्थात् कृतार्थ पुरुष का चित्त सभी संकल्प – विकल्पों से रहित होता है, अतः मायातीत हो जाने से वह विकाररहित, ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा अजर तथा अमर होकर विचरण करता है। उसका मन परम शान्त तथा बुद्धि सर्वव्याप्त चैतन्यात्मा से प्रकाशित हो जाती है। अतएव वह समस्त प्राणियों में अपना आत्मस्वरूप देखता है तथा समस्त प्राणियों को अपने आत्मस्वरूप में सन्निहित देखता है। इस प्रकार जब योगी सर्वरूप, सर्वाधार, सर्वव्यापी परमात्मा के साथ एकरूपता का अनुभव करता है तब शरीरधारी होते हुए भी वह योगी परमात्मा के सर्वनियन्ता स्वरूप में ही रमण करता है। जिस प्रकार शुद्ध जल अन्य शुद्ध जल में मिलकर एक हो जाते हैं, वैसे ही युक्तयोगी की आत्मा तथा परमात्मा एक ही सच्चिदानन्दस्वरूप में सर्वव्याप्त रहते हैं।

अब हम समाधि की उत्तरोत्तर उच्च भूमिकाओं पर दृष्टि डालेंगे जिनके द्वारा पराविज्ञान (Superscience) की विभूतियों का ज्ञान प्राप्त होगा। यद्यपि यह विषय लौकिक बुद्धि का क्षेत्र नहीं है जहाँ तर्क तथा वैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता ली जा सके तथापि महर्षि पतंजलि जैसे त्रिकालज्ञ महापुरुष की वाणी पर विश्वास तथा श्रद्धा का सदुपयोग किया जा सकता है। शतप्रतिशत विश्वास के लिए हमें ''संयम'' की साधना की आवश्यकता होगी जिसकी परिभाषा है कि –

''त्रयमेकत्र संयमः।।''

(योगदर्शन 3/4)

अर्थात् एक ही प्रत्यय पर धारणा, ध्यान तथा समाधि की सिद्धावस्था का नाम ''संयम'' है। संयम सिद्ध होने पर योगी में वह अलौकिक शक्ति आ जाती है जिसके द्वारा प्रातिभज्ञान का द्वार खुलता है जिसमें हमारी लौकिक मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों का प्रवेश वर्जित है, केवल प्रज्ञाचक्षु, जिसे 'तीसरी आँख'' कहा जाता है, का ही प्रवेश होता है। इस परीक्षण में भौतिक साधनों की आवश्यकता नहीं होती, अपितु चित्त के तीन परिणामों की आवश्यकता होती है।

●●●

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रियाः।।

जहाँ स्त्रियों का आदर होता है, वहाँ देवता प्रसन्न होते हैं और जहाँ उनका सम्मान नहीं होता, वहाँ समस्त कार्य और प्रयत्न असफल हो जाते हैं।

'लल्ला! कुम्भ में अवश्य इलाहाबाद आना'

– प्रेम बिहारी त्रिपाठी, से नि. अधिशासी अभियंता, झांसी

'लल्ला! तुम कुम्भ में अवश्य इलाहाबाद आना', खोवे में ढेर सारा प्रसाद देते हुए, गुरुदेव योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने कहा। झाँसी में योग प्रचार कार्यक्रम एल.बी.एम. प्रांगण में चल रहा था। अपने लगभग पचास मिनट के प्रवचनों के पश्चात् गुरुदेव अपने बालकों को प्रसाद बाँट रहे थे। उनकी आज्ञा सुनकर, मन प्रसन्नता से भर गया कि गुरुदेव ने मुझे स्वयं बुलाया है। उन दिनों मैं गुरुदेव के विषय में बहुत ही कम जानकारी रखता था। वास्तव में पूछा जाये तो मैं उन दिनों गुरु सत्ता के विषय में ज्ञान शून्य–सा ही था।

पंडाल के निकट, बाहर से आये, कुछ अपरिचित गुरुभाई, चर्चा कर रहे थे, गुरुदेव के विषय में। एक गुरुभाई बोल रहे थे और बाकी बड़े ध्यान से सुन रहे थे। बोलने वाले भाई जी समझा रहे थे – 'अपने गुरुदेव योगियों के भी ईश्वर हैं योगियों को भी मार्ग दर्शन देते हैं। प्रकृति पर इनकी हुकूमत चलती है। ग्रह–नक्षत्र और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में कार्यरत अपरा प्रकृति आवश्यकता पड़ने पर इनके मन में उठने वाले संकल्पों को तुरन्त पूरा कर देती है। सामान्यत: यह प्रकृति के विधान में हस्तक्षेप नहीं करते हैं। संसार में घटने वाली घटनाओं के घटनाक्रम को बदलने अथवा उसमें अपनी इच्छानुसार परिवर्तन कराने की अद्‌भुत क्षमता है इनमें। इनके लिए सब कुछ सम्भव है।' उनकी बातें सुनते हुए, मैं आगे बढ़ गया। मेरे मन में तरह–तरह से विचार उठ रहे थे, 'प्रकृति पर गुरुजी की हुकूमत चलती है, यह कैसे सम्भव है?' यह बात मुझे कुछ जँची नहीं। कुछ देर सोचा, जब कुछ समझ में नहीं आया तो किसी अन्य विषय की ओर ध्यान चला गया।

दूसरे दिन पत्नि के आग्रह पर, कुम्भ मेले के दौरान इलाहाबाद चलने का आरक्षण दो बर्थों का करा लिया। उन दिनों कुम्भ मेले के यात्रियों को कुम्भ में जाने से पूर्व सिविल अस्पताल में जाकर टीका (इन्जैक्शन) लगवाना पड़ता था, सो वह भी लगवा लिया। अब इलाहाबाद जाना सौ फीसदी पक्का हो गया था। अब तो गुरुजी की आज्ञा का पालन भी हो जायेगा और विश्व का सबसे बड़ा मेला कुम्भ भी घूम आयेंगे। सुना है कुम्भ मेले में बड़े–बड़े महात्मा ही नहीं, बल्कि दूसरे लोकों के उच्च कोटि के ऋषि मुनि तक अपना रूप बदल कर आते रहते हैं। पता नहीं कब, किसकी, कैसी कृपा हो जाय। उनके भी दर्शन हो जायं। परिवार में जोश था कि पापा और अम्मा सबसे छोटी डौली को लेकर, गुरुजी के बुलाने पर इलाहाबाद जा रहे हैं। गाड़ी छूटने के लगभग आधा घण्टा पूर्व ही हम लोग रेलवे स्टेशन के उस प्लेट फार्म पर पहुँच गये, जहाँ पर इलाहाबाद जाने वाली ट्रेन खड़ी थी। मेरे साथ मेरे दोनों छोटे भाई पंकज और ओम प्रकाश भी मुझे गाड़ी पर बैठाने आये थे।

प्लेट फार्म पर आते ही, मैं हक्का–बक्का रह गया, यह देखकर कि पूरी गाड़ी भीतर से लेकर, दरवाजों तक ढूँस–ढूँस कर भर चुकी है। कुछ लोग पायदानों पर भी गेट पकड़े खड़े थे। यही नहीं, जितने लोग ट्रेन के भीतर घुसे पड़े थे, उससे कहीं ज्यादा लोग ट्रेन की छत पर बैठे हुए थे। इस नजारे को देख कर, मैं सोचने लगा कि डिब्बे के भीतर आखिर घुसा कैसे जाय। अपना होलडाल एवं अटैची पत्नि को सुपुर्द कर, मैं डिब्बे के भीतर घुसने की सम्भावनायें तलाशने लगा। रिजर्वेशन की जो बर्थे एक–एक व्यक्ति के लिए निर्धारित थीं, उन पर सात–सात, आठ–आठ यात्री बैठे थे। फर्श पर भी तिल भर जगह खाली नहीं थी, जहाँ पैर रखने तक की जगह बन सके।

मैंने देखा ललितपुर के एक डी.वाई.एस.पी. अपने साथ तीन चार पुलिस वालों को लेकर, अपनी पत्नि सहित उस रिजर्वेशन के डिब्बे में घुसने को तैयार हुए। पुलिस वालों ने गाली गलौच एवं अपने डन्डे के बल पर, बलपूर्वक, अनेक लोगों को डिब्बे के दरवाजे से हटाया और अपने साहब एवं साहिबा को किसी तरह डिब्बे के भीतर लेजाकर उन्हें उनकी बर्थ खाली कराकर बैठा कर, डिब्बे के बाहर आ गये। कुछ मिनट खड़े रहे और फिर चले गये।

अभी पांच मिनट भी नहीं गुजरा था कि डिब्बे के भीतर लोगों में धक्का मुक्की होने लगी और डिब्बे के भीतर से एक रेला–सा आया जिससे दरवाजे पर खड़े व पायदानों पर लटके लोग प्लेटफार्म पर आ गिरे। उन्हीं के पीछे डी.वाई.एस.पी. व उनकी पत्नि बुरी तरह अस्त–व्यस्त स्थिति में, अपनी अटैची पकड़े, किसी तरह जान बचाकर, डिब्बे से बाहर आ गये और अपनी यात्रा निरस्त कर वापस लौट गये। रिजर्वेशन वाले बाहर खड़े थे और बिना रिजर्वेशन वाले डिब्बे में घुसे थे। इसी बी गार्ड ने सीटी बजा दी। मैं दुखी मन से निराश होकर सोच रहा था कि देखो गुरु जी, मेरे हाथ में रिजर्वेशन का टिकट है, मैं प्लेट फार्म पर, इलाहाबाद आने के लिए तैयार खड़ा हूँ। मेरे सामने इलाहाबाद की गाड़ी खड़ी है, मैं आना चाहता हूँ किन्तु इन परिस्थितियों के कारण मेरा आना अब असम्भव हो चुका है। सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है। मेरी आँखों से आँसू झलक आये। मैंने रूमाल से उन्हें चुपचाप पोंछ लिया। गाड़ी ने दोबारा सीटी दी और गाड़ी चल दी। मैं दूर जाती हुई गाड़ी को देखता रहा, गाड़ी आँखों से ओझल हो गई। अंततः निराश होकर, अपना सामान उठा कर वापिस चलने के लिए, अपने दोनों छोटे भाइयों को देखा तो वे कहीं भी नजर नहीं आये। आते समय तो वे दोनों होलडाल (बिस्तर बंद) उठाकर लाये थे। अब अकेले इतना वजन अटैची कैसे उठे। कुली भी प्लेटफार्म से नदारत। मुझे अपने भाइयों पर झुंझलाहट होने लगी कि इन्हें यदि कहीं जाना ही था तो कम से कम बता के जाते। तभी मेरी दृष्टि प्लेट फार्म पर दूर से आते हुए, अपने दोनों भाइयों पर पड़ी। उनके साथ करीब तीस चालीस आर.पी.एफ. के जवान और बीस पचीस टी.टी.आई तथा स्टेशन मास्टर व कुछ अन्य अधिकारी थे।

मैं कुछ समझ नहीं पाया। वे सब प्लेटफार्म पर कुछ – कुछ फासला लेकर अपनी

पोजीशन में खड़े हो गये। मैं मन ही मन सोचने लगा कि अब इन सब लोगों का यहाँ क्या काम? जब गाड़ी छूट गई, न जाने कितने किलोमीटर आगे बढ़ चुकी होगी, अब पुलिस व टी.टी.आई. लोगों का खाली प्लेटफार्म पर पोजीशन लेकर खड़े होने का क्या मतलब? तभी मेरे भाइयों ने एक स्वर में कहा, 'गाड़ी बैक हो रही है, गाड़ी बैक होकर वापिस आ रहे है।' 'गाड़ी जब चली गई तो वापिस कैसे आयेगी?' मैंने आश्चर्य से पूछा। तभी निकट आ गये स्टेशन मास्टर ने बताया, आप लोगों के पास रिजर्वेशन टिकट था, लेकिन आप लोगों का डिब्बे में चढ़कर बर्थ तक पहुंचना सम्भव नहीं था, क्योंकि बिना रिजर्वेशन वाले यात्री अनाधिकृत रूप से डिब्बे में घुसे पड़े थे। रेलवे की यह ड्यूटी है कि आपको जगह दिलवाये। आपके भाइयों की शिकायत पर मैंने डी.आर.एम. को इमरजैन्सी टेलीफोन करके सूचित किया तो डी.आर.एम. साहब ने तुरन्त रेलवे पुलिस अधिकारियों व सी.टी.आई. को शीघ्र प्लेटफार्म पर पहुँचने के आदेश दिये। यही नहीं ओरछा की ओर बढ़ रही गाड़ी के आउटर सिगनल अप करवाकर गाड़ी रूकवाई तथा उसे वापिस प्लेटफार्म पर लाने के आदेश दिये। इसलिए थोड़ी ही देर में गाड़ी बैक होकर आ रही है। अब मेरी समझ में आया कि मेरे दोनों छोटे भाई अचानक डिब्बे के सामने से क्यों गायब हो गये थे और वे अपनी सूझ-बूझ से क्या-क्या करते रहे इस बीच। दूर से वापिस आती हुई ट्रेन की बैक दिखाई देने लगी। यह आश्चर्य की बात थी। गाड़ी आई और सभी आरक्षण के डिब्बे खाली कराये गये। मैंने अपनी बर्थों पर सामान जमाया और आराम से लेटने की व्यवस्था की। पता चला डी.आर.एम. ने एक स्पेशल रैक लगवाकर, अन्य यात्रियों की भी व्यवस्था कर दी। गाड़ी दो घण्टे लेट पहुंची इलाहाबाद। रामानुज मार्ग पर आश्रम के कैम्प में जब मैं पहुँचा तो देखा, सामने एक तख्त पर सद्गुरु देव विराजमान थे, उन्होंने मंद मंद मुस्कुराते हुए, अपने इस बालक से पूछा, 'लल्ला! तुम लोग आ गये?' हम सबने श्री चरणों में प्रणाम किया।

गुरुदेव की हुकूमत प्रकृति पर चलती है, यह बात यहाँ भली भांति स्पष्ट समझ में आने लगी, जब विषम परिस्थिति प्लेटफार्म पर उत्पन्न होने पर, श्री गुरुदेव के प्रभाव में आकर प्रकृति ने मेरे दोनों भाइयों को स्टेशन मास्टर से शिकायत करने एवं तुरन्त कार्यवाही करने हेतु कहने की उन्हें प्रेरणा दी। स्टेशन मास्टर ने अपने उच्चाधिकारियों का प्रयोग करते हुए, इमरजैन्सी कॉल डी.आर.एम. को उनके निवास पर किया। डी.आर.एम. ने भी बिना कोई विलम्ब किये, गाड़ी को अंतिम आउटर सिग्नल से बैक करवाने के साथ-साथ, प्लेटफार्म पर टी.सी. एवं आर.पी.एफ. का सम्पूर्ण स्टॉफ एक साथ भेज दिया और प्रकृति ने होनी को अनहोनी में बदल दिया। वह सब हो गया जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती है।

एक और भी सशक्त उदाहरण मेरे सामने आया, जिसमें श्री सद्गुरुदेव ने असम्भव को सम्भव कर दिखाने के लिए, मुझे दो माह पहिले ही आश्वस्त कर दिया था, कह दिया था, 'लल्ला! तुम चिंता मत करो। तुम कहते हो कि काम होना असम्भव है। तुम्हें प्रसाद मिल गया अब उसे करने का काम हमारा है। तुम आम खाओ, पेड़ मत गिनो।

1984 में मेरी पोस्टिंग आगरा में थी। अप्रैल के महीने में यकायक प्रोग्राम बनाकर, मैं आश्रम पहुँच गया। दोपहर का समय था, सद्गुरुदेव के कक्ष में मात्र कलकत्ते से आये एक पति–पत्नि बैठे गुरुदेव से प्रार्थना कर रहे थे; पत्नि कह रही थी, 'आपके द्वारा दी गई ध्यान की स्थिति, अभ्यास न करने से बिगड़ गई। आप फिर से वही स्थिति दे दो गुरु जी। उनकी विनय सुन कर, गुरुदेव ने कहा, 'तुम लोग यज्ञशाला में चलो, आज तुम्हारी स्थिति तुम्हें मिल जायेगी।' दम्पत्ति उठकर यज्ञशाला में चले गये।अब नम्बर मेरा आया, मैं उस दम्पत्ति के पीछे ही बैठा था। मेरे अलावा कक्ष में और कोई नहीं था। मैंने उठ कर गुरुजी के चरणों में पुनः प्रणाम किया और गुरुदेव ने प्रसाद देने के लिए, मुट्ठी भर के अपना हाथ ऊपर उठाया और साथ ही पूछा, ' 'बोलो लल्ला, तुम्हें क्या चाहिए?' इस अमूल्य प्रश्न का उत्तर यकायक मेरे पास नहीं था। मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि मुझे क्या चाहिए। गुरुदेव की मुट्ठी में प्रसाद भरा था, हाथ ऊपर उठ चुका था प्रसाद देने को, उनका अमूल्य प्रश्न मेरे कानों में था, किंतु सोचेन का समय नहीं था, मेरे पास। यकायक मुँह से निकल गया, 'गुरुजी प्रमोशन'। 'प्रमोशन! बस गुरुदेव ने आश्चर्य से पूछा, किन्तु ऊपर उठे हाथ को एक क्षण रोककर बोले "अच्छा लल्ला! लो प्रमोशन लो"। मुझे प्रमोशन का प्रसाद देते ही गुरु जी समझाने लगे। मैं तो चाहता था कि तुमभी (आध्यात्म जगत से सम्बन्धित) मांगोगे, लेकिन तुमने मांगा भी तो प्रमोशन। चलो ये भी ठीक है, जब संसारी ऐश्वर्य और धन–सम्पत्ति का भोग करके निकलोगे और इस तरफ (योग की गहराई में) आओगे तो तुम्हें रजोगुण का आकर्षण परेशान नहीं करेगा, जो सबसे बड़ी बाधा है, साधकों के रास्ते की। जो पहले ही कुछ पाकर, आगे बढ़ते हैं, उन्हें अकसर रजोगुण किसी न किसी रूप में अपनी ओर खींच लेता है। कुछ तो उस ऐश्वर्य प्रधान जीवन को अपनी साधना जनित उपलब्धि ही समझ लेते हैं' अपनी बात पूरी करते हुए, गुरु जी उठने को हुए तो मैंने, सहज भाव से उनके आशीर्वाद का महत्व न समझते हुए, उसमें संशय प्रकट करते हुए कहा, गुरुजी आपने आशीर्वाद तो दे दिया, किंतु प्रमोशन होने में बड़ी मुश्किल है क्योंकि प्रमोशन के लिए अधिशासी अभियंता का मात्र एक पद खाली है जबकि मेरा नम्बर नवां है, मुझ से ऊपर आठ लोग और भी हैं। जब उन आठ लोगों के प्रमोशन हो जायेंगे, तब मेरा नवां नम्बर आयेगा।' मेरी बात सुनकर, भगवान कृष्ण एवं भगवान सदाशिव में पूर्ण लयता बनाये रखने वाले सद्गुरुदेव ने बड़ी ही सरलता पूर्वक कहा, 'लल्ला! तुम्हें इससे क्या करना है? तुम्हें आम खाना है या पेड़ गिनना है। प्रमोशन कैसे होगा, कैसे नहीं होगा, यह सब देखना हमारा काम है। तुम चिंता न करो।'

लगभग दो माह बाद, आठ जून 1984 को मेरा प्रमोशन अधिशासी अभियंता के पद पर हो गया। उस लिस्ट में एक के स्थान पर नौ लोगों के प्रमोशन हुए थे, जिसमें मेरा नाम आठवाँ था। इस घटनाक्रम में सद्गुरुदेव के संकल्प मात्र से प्रकृति ने किस तरह उ.प्र. जलनिगम के प्रशासनिक अधिकारियों से लेकर शासन सत्ता में बैठे उच्चाधिकारियों के मन, बुद्धि और

अहंकार को किस तरह परिवर्तित किया कि विभाग की नीतिगत, विचारधारायें ही बदल गई और किसी अन्य के साथ अन्याय भी नहीं हुआ।

उ.प्र. जल निगम में उन दिनों विद्युत यांत्रिक एवं सिविल इंजीनियर्स के बीच अपने–अपने कैडर को लेकर, कड़ा विवाद चल रहा था, जो कि मुकदमे बाजी का रूप भी ले चुका था, जिसके अनुसार तेहत्तर एवं सत्ताइस प्रतिशत शाखाओं का कोर्ट से आदेश हुआ था। मेरे प्रमोशन के समय एस.के. शर्मा एम.डी. एवं आशुतोष त्रिपाठी उनके सचिव थे। दोनों ही सिविल इंजीनियर्स थे। प्रमोशन के लिए मात्र एक पद विद्युत यांत्रिक अधिशासी अभियंता का रिक्त हुआ था।

सद्गुरुदेव के संकल्पपूर्ण प्रसाद देते ही, रातों रात सिविल इंजीनियर्स में विद्युत यांत्रिक इंजीनियर्स के प्रति जो कट्टर विरोधी भाव थे, वह सहयोग के भाव में बदलने लगे। उनके मन में अपरा शक्ति (प्रकृति) ने प्रेरणा देकर, विचार उठाया कि क्यों न आठ नई खोली जाने वाली रखरखाव शाखाओं में सिविल इंजीनियर्स की जगह विद्युत यांत्रिक इंजीनियर्स की पोस्टिंग करके, इनकी क्षमता का सही आंकलन किया जाय कि क्या ये लोग रखरखाव शाखाओं के लिए उपयुक्त हैं अथवा नहीं। प्रस्ताव बना के उ.प्र. शासन को भेजा गया। उ.प्र. शासन के मंत्रिमंडल की बैठक में अनेक प्रकार के विरोध होने के बाद भी उक्त प्रस्ताव पारित हुआ और विद्युत यांत्रिक अधिशासी अभियंता का मात्र एक पद रिक्त होते हुए भी, नौ प्रमोशन अधिशासी अभियंताओं के पद पर किये गये।

यह था, प्रकृति पर हुकूमत करने वाले हमारे योग योगेश्वर योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का अपने लल्ला को दिया गया शक्तिपात पूर्ण प्रसाद।

●●●

मन का विकास करो और उसका संयम करो, उसके बाद जहाँ इच्छा हो, वहाँ इसका प्रयोग करो – उससे अति शीघ्र फल प्राप्ति होगी। यह है यथार्थ आत्मोन्नति का उपाय। एकाग्रता सीखो और जिस ओर इच्छा हो, उसका प्रयोग करो। ऐसा करने पर तुम्हें कुछ खोना नहीं पड़ेगा। जो समस्त को प्राप्त करता है, वह अंश को भी प्राप्त कर सकता है।

– स्वामी विवेकानन्द

गुरुभक्ति के आदर्श उदाहरण

श्री भाई खुशीराम

– श्री योगी सूरजप्रसाद शर्मा, वाशिष्ठ, तैय्यवपुर (एटा)

संसार परिवर्तनशील है। इसमें समय–समय पर बड़े–बड़े महापुरुषों ने जन्म लिया व अपने आदर्श जीवन के ज्वलंत उदाहरण से संसार को विस्मयान्वित करते हुए थोड़े समय में ही परलोकवासी हो गये। वस्तुतः इन लोगों का अपना कोई कार्य नहीं होता। ये लोग एक अभिनय सा करते आया करते हैं, जिससे इनके चरित्रों को देखकर व सुनकर सांसारिक लोग उनका अनुसरण करें व अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। श्री भाई खुशीराम जी इसी प्रकार के आदर्श पुरुषों में से एक हैं। श्री भाई खुशीराम जी का जन्म पंजाब प्रान्तान्तर्गत जिला करनाल के एक छोटे से गांव 'अलूपुर' के एक पवित्र अग्रवाल वैश्य घराने में हुआ। लेखक का जन्म उत्तर प्रदेश के जिला एटा के एक तैय्यवपुर नामक गांव में हुआ। यद्यपि मेरा उनका निकटवर्ती परिचय सम्भव नहीं था, किन्तु गुरु भाई होने के नाते मैं उनके पवित्र जीवन को भली प्रकार से जानता हूँ। श्री भाई खुशीराम जी गुरु–भक्ति के एक ज्वलंत उदाहरण थे। श्री गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने एक प्रसंग में कहा है –

सत्य वचन आधीनता, पर तिय मात समान।
इतने में हरि ना मिले, तुलसीदास जमान।।

श्री भाई खुशीराम जी के जीवन में ये तीनों बातें पूरी–पूरी उपलब्ध थीं। उनकी बाल्यावस्था पवित्र भोलेपन से भरी हुई थी। अपने समवयस्क बालकों में उनका जीवन सब प्रकार से परम पवित्र था। उनके जीवन पर किसी प्रकार के दुर्व्यसन का प्रभाव नहीं पड़ा था। अपने गांव के निकट में ही एक 'अहर' नामक गांव में ही उन्होंने उस समय के अनुसार उर्दू मिडिल की शिक्षा प्राप्त की। बाद में गृह कार्यों में लग गये। अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण श्री भाई खुशीराम जी का पाणिग्रहण संस्कार उनके पिता ला. ज्ञानीराम ने बाल्यावस्था में ही कर दिया था। श्री भाई खुशीराम जी ने लगभग 35 वर्ष तक अपने गृहस्थ जीवन को बड़ी पवित्रता के साथ निभाया। अपने जीवन में वह पूर्ण सत्यवादी, अनन्य गुरुभक्त तथा पूर्ण चरित्रवान रहे। उनके घर में कुछ कृषि–कार्य और वाणिज्य होता था। सांसारिक कार्यों में काफी व्यस्त रहते थे, अतः कोई परमार्थिक साधना वह श्री गुरुजी की आज्ञानुसार नहीं कर सके। फिर भी उनका सारा जीवन साधनामय ही व्यतीत हुआ। चलते–फिरते, उठते–बैठते अपने श्वास प्रश्वासों में गुरु प्रदत्त में को वह निरंतर जाप करते रहा करते थे। सत्य व्यवहार और आचरण के इतने पवित्र थे कि उन्होंने अपने जीवन में पर स्त्री का दर्शन नहीं किया। उनके घर में समय–समय पर अनेक श्री प्रभु जी के चमत्कारिक चरित्र हुए। उन सबको छोड़ कर श्री भाई

खुशीराम जी के जीवन के प्रयाण काल की एक विशेष घटना का उल्लेख करना चाहता हूँ। ऐसा सुयोग किसी भाग्यवान जीव को ही प्राप्त हुआ करता है। आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने गीता में कहा है –

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं, स याति परमां गतिम्।।

अर्थात् जो 'ॐ' इस एकाक्षर का उच्चारण करता हुआ व मेरा ध्यान करता हुआ शरीर छोड़ता है वह परम गति को प्राप्त होता है। आनंद कंद भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी के यह पवित्र भाव श्री भाई खुशीराम जी के अन्तिम प्रयाण के समय अक्षरशः घटित हुए। उनको अपनी मृत्यु का एक मास पूर्व ही पूरी तरह ज्ञान हो गया। सभी गांव वासियों से उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि अब की बार मेरा यह शरीर नहीं रहेगा। श्री भाई खुशीराम जी अपने गांव वासियों व अपने गुरुभाईयों को अपने पास बुला–बुला कर कहते रहे कि भाई तुम मेरे पास आकर श्री हरीनाम संकीर्तन किया करो व श्री प्रभु जी के पवित्र चरणों का गुणानुवाद किया करो। जिससे मुझे सद्गति प्राप्त हो। श्री भाई खुशीराम जी को अपनी मृत्यु से 10–20 दिन पहले मन्थर ज्वर हो गया था। ज्वर की तीव्र वेदना में भी उन्होंने अपने गुरुमंत्र का स्मरण अनवरत जारी रखा। वे श्री गुरुदेव जी के दर्शन प्राप्त करने का बार–बार आग्रह करते रहे। दृढ़ता से अपने एक गुरुभाई को श्री गुरुजी महाराज के चरण कमलों में यह कहकर भेज दिया कि श्री गुरु जी मुझे अन्तिम दर्शन दे जांय, मैं विवश हो गया हूँ। अन्यथा मैं स्वयं आ जाता। किन्तु उनकी अंतिम अभिलाषा पूरी नहीं हो सकी। श्री गुरुजी महाराज स्थूल में नहीं आ सके। किन्तु श्री गुरुजी के न पहुँचने पर भी उनके अनन्य स्मरण में कोई अन्तर नहीं पड़ा। प्रत्युत और अधिकाधिक बढ़ता ही गया। होनहार बलवान थी, समय निकट आ गया। श्री भाई खुशीराम जी अपनी शय्या पर लेटे हुए योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज अपने परम दिव्य तेजोमय स्वरूप से सामने विराजमान देख रहे हैं। स्वर्गीय देवता अनेक प्रकार की स्तुतियां कर रहे हैं। देवता प्रार्थना करते हैं – 'प्रभो यह आपका बालक है, कृपाकर आज्ञा दें ताकि हम इसको ब्रह्मलोक को ले जा सकें। परम योग योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज हँस रहे थे और अपनी मृदु मुस्कान से स्वीकृति प्रदान कर दी। उन्होंने अपने मुख से 'ॐ' का उच्चारण किया। 'ॐ' की उस ध्वनि में से महान तेज प्रकट हुआ और उस तेज में से आनंद कंद भगवान श्री कृष्ण चन्द जी प्रकट हो गये। उस समय अन्तिम प्रयाण तक श्री भाई खुशीराम जी को भगवान श्री कृष्ण के अनवरत दर्शन होते रहे। उनको शय्या पर लेटे–लेटे कभी बृज लीलाओं का अनुभव होने लगता, कभी गीता के प्रवचन सामने आने लगते। कभी देव लोक की स्त्रियाँ (देवांगनायें) आकर उनकी सेवा करने लगतीं, कभी भगवत् धाम के दर्शन होने लगते। इसी प्रकार भगवत् लीलाओं का अनुभव अंतिम समय तक होता रहा। अंतिम समय उनको देवलोक से आये हुए विमान के दर्शन हुए। विमान के दर्शन होने पर श्री भाई खुशीराम जी ने अपनी माता जी से कहा – माँ यह विमान फूलों से सजा हुआ

मुझे लेने को आ गया, इसमें बैठे हुए चतुर्भुज स्वरूप देव मुझे बुला रहे हैं। किन्तु इस विमान में, मैं नहीं जाता, तू जल्दी से छत फोड़ दे ताकि मैं उसमें से निकल जाऊं। यह कहकर श्री भाई खुशीराम जी ध्यानस्थ हो गये और थोड़ी देर में आंखें खोलकर फिर कहा – माँ, मैं उड़ कर गया किन्तु तूने छत नहीं फोड़ी। इसलिए मैं लौट कर आ गया हूँ। श्री भाई खुशीराम जी को दो तीन बार यही क्रिया होती रही व उनका सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर में से उत्क्रमण करता रहा। किन्तु उनकी यह चेष्टा सफल न हो सकी। फिर चेतना में आकर अपनी माँ से कहा – माँ तू बैठी रही, छत फोड़ देती तो मैं निकल जाता, अब क्या करूँ। अब विमान वाले बहुत आग्रह कर रहे हैं। अब श्री कृष्ण जी भी इस विमान में बैठ गये और मुझे भी बुला रहे हैं। अतः मैं अब इस विमान में ही बैठ जाता हूँ। यह कहकर विमान को देखते हुए व श्री कृष्ण जी के दर्शन करते हुए सन् 60 की वैशाख शुदी एकादशी को श्री भाई खुशीराम जी ने अपने इस भौतिक शरीर का त्याग कर दिया। श्री भाई, खुशीराम जी के प्रयाण के बाद में, मैं उनके गाँव को श्री गुरुदेव जी के चरण कमलों के साथ गया। उनकी श्री माता जी के मुख से व उनके अन्य कुटुम्बियों के मुख से श्री भाई खुशीराम जी के अंतिम संस्मरण व दिव्यानुभूतियाँ सुनीं जो इस छोटे से लेख में सम्बद्ध करके लिख दी हैं।

सबसे बड़े हर्ष की बात तो यह है कि श्री भाई खुशीराम जी सभी कुटुम्बियों को अब भी देवलोक से दर्शन दिया करते हैं। समय-समय पर अनेक प्रकार के आदेश देते रहते हैं। अभी पिछले दिनों उनके सुपुत्र चि. किशन चन्द्र पटवारी का ज्येष्ठ सुदी एकादशी को पाणिग्रहण संस्कार था, उन्होंने सद्गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को आग्रह पूर्वक बुलाया था। इन बालकों ने जिस ढंग से श्री गुरुजी का स्वागत किया, वह वर्णन से बाहर है। उन लोगों ने जिस समय घर बुला कर श्री गुरुदेव जी की आरती की। उस समय ध्यानानुभव वालों को स्पष्ट अनुभव हो रहा था कि भाई खुशीराम जी देवलोक से पुष्प वर्षा कर रहे थे। श्री भाई खुशीराम जी के अंतिम संस्मरणों को याद करके यह भगवद् वचन याद आ रहा है:–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

ब्रह्म बोधक 'ॐ' इस एकाक्षर का बोध करता हुआ व अर्थ स्वरूप मेरा ध्यान करता हुआ देह त्याग करता है वह परम गति को प्राप्त करता है।

●●●

लोग तुम्हारी स्तुति करें या निन्दा, लक्ष्मी तुम्हारे ऊपर कृपालु हो या न हो, तुम्हारा देहान्त आज हो या एक युग में, तुम न्यायपथ से कभी भ्रष्ट न हो।

– स्वामी विवेकानन्द

योग को अपनाओगे - सच्चा आनन्द पाओगे

-- रामेश्वर (दद्दू), गंगापुर सिटी

हर मानव की यही चाहत रहती है कि उसके जीवन में कभी दुःखदायी परिस्थिति न आवे। कभी क्लेशों से उसका सामना न होवे। मेरा जीवन आनन्दमय हो। सुखमय जीवन व्यतीत करूं। इस सुख शान्ति के लिए, इस आनन्द के लिए मनुष्य दिन-रात, इधर-उधर भटकता रहता है। इसको पाने का अथक प्रयास करता है। वो सोचता है कि सुख बाहर मिलेगा, वो सोचता है धन दौलत, गाड़ी, बंगला आदि भोग-ऐश्वर्य की सामग्री जुटालूँ इनमें सुख मिलेगा। बंगले में रहना जिसमें ए.सी. लगा हो, उसमें आनन्द से रहूंगा। अच्छी गाड़ी में घूमूंगा, अच्छा नाम होगा, लोग मेरी इज्जत करेंगे। कितना अच्छा लगेगा। लेकिन नहीं ये सुख वास्तविक सुख नहीं है। ये स्थाई सुख नहीं है।

स्थाई सुख बाहर नहीं है। वो इन भौतिक सामग्री में नहीं है। ये केवल सुख के साधन हैं। वैसे तो इन सब सुख के साधनों में छुपा हुआ दुःख दिखाई नहीं देता। क्योंकि इतनी सोच, इतना विचार करना साधारण मनुष्य के वश का नहीं है। ये सब भोग सामग्री दुःखों से ओत-प्रोत है। गाड़ी जिस में बैठ कर बड़ी शान से सवारी करते हैं। रास्ते में कहीं किसी से टक्कर हो गई तो क्या होगा? विचार करो।

हम परमात्मा के अंश हैं। हमारे अन्दर चेतन आत्मा जो साक्षात् परमात्मा ही है, विराजमान है। हमारे शरीर में जब इस आत्मा का प्रवेश होता है तभी हम 'हम' होते हैं। वरना हम नहीं रहते। इसी आत्मा से हमारे शरीर के सभी अंग कार्य करते हैं। आँखें देखती, कान सुनते हैं, मुँह से बोलते हैं। ये सभी कार्य के पीछे आत्मा है। उसी से हमारा मनुष्य शरीर सार्थक है। अगर ये निकल जाये तो हमारा वजूद समाप्त हो जाता है। बिजली के जितने भी उपकरण बाजार में मिलते हैं वो केवल बिजली से ही प्रकाशित होते हैं। अगर उनमें बिजली नहीं है तो वो बेकार हैं। किसी काम के नहीं हैं। ठीक इसी तरह हमारे अन्दर बसी हुई आत्मा के द्वारा ही हम मनुष्य कहलाते हैं। उसी से हम संसार में रहकर अपना कर्तव्य करते हैं।

क्या आप जानते हैं कि आत्मा का स्वरूप उसका स्वभाव कैसा है। उसका स्वरूप है 'आनन्दमय' उसका स्वभाव है 'शान्त। तो हम कौन हैं? इसको भी पहचानो। इस पर भी विचार करो। जब हमारा शरीर जिसकी वजह से क्रियाशील हो रहा है वो ही हम हैं। हम चेतन आत्मा हैं। लेकिन हम इसको भूल रहे हैं। (यह विषय बहुत लम्बा है अतः इसे मैं आगे नहीं बढ़ाऊंगा) जब हमारा स्वरूप आनन्द स्वरूप है, हमारा स्वभाव शान्त स्वभाव है। तो फिर आनन्द पाने के लिए सुख पाने के लिए बाहर क्यों भटक रहे हैं। जो अन्दर है, हमारे पास है उसको पाने के लिए दूर-दूर तक भटकने की जरूरत नहीं है। हम दुःखी क्यों हैं? इसलिए दुःखी है कि हमने बैठ कर

ये मन्थन नहीं किया। हमने अपने आप को नहीं पहचाना। हम परेशान हो रहे हैं। हम दु:खी हो रहे हैं। लेकिन सबके होने का कारण नहीं खोज रहे। हमारे पास धन नहीं है। हमारे पड़ोसी के पापस हमसे अच्छा मकान है। हमसे अच्छी गाड़ी में घूमता है। हम केवल दूसरों को देख कर दु:खी हो रहे हैं। दूसरे हमसे ज्यादा सम्पन्न हैं। इस तरह के विचारों से हम दु:खी हो रहे हैं।

हमारे दु:खी होने का एक और कारण है, वो है अज्ञानता – अविद्या। सच को झूठ मानना, झूठ को सच मानना। ये शरीर ये भोग सामग्री सब विनाशी है। सब झूठी है लेकिन हमने इनको सच मान रखा है। इनको ही हमने सब कुछ मान लिया। जबकि ये एक दिन मिट्टी में मिल जायेगी। इसका नाश हो जायेगा। लेकिन ये विनाशी है फिर भी हम इसको सत्य मान रहे हैं और इसी में दिन रात खप रहे हैं। जो अविनाशी है जो सत्य है, जिसका कभी नाश नहीं होता, जो हमेशा रहता है। उसको हम ग्रहण नहीं करते, उससे हम दूर रहते हैं। उसको हम अपनाते नहीं। उस सत्य से मुँह मोड़ बैठे। असली को छोड़ कर नकली में मस्त हो रहे हैं।

हमारे एक भाई ने भजन बनाया है – झूठी दुनिया से मन को हटा ले, ध्यान प्रभु चरणों में लगा ले, नसीबा तेरा जाग जायेगा।

"राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।" हर हाल में प्रसन्न रहो, हर हाल में आनन्द मनाओ। गरीबी, अमीरी तो सब आनी जानी है इनको देखकर सुखी–दुखी मत हो। हम साधारण पुरुष नहीं हैं। हम परमात्मा के सच्चे बच्चे हैं। ये सुख ये दु:ख हम को विचलित नहीं कर सकते। दु:ख देख कर मत रोओ। इसको भी प्रभु का प्रसाद समझ कर ग्रहण करो। वैसे सुख हो या दु:ख ये सब अपने पूर्व के कर्मों का फल है। जैसा हमने पूर्व में बोया था वैसा ही हम काटेंगे। बोये बीज बबूल के तो फूल कहां से होय। क्यों रोते हो। ये सब परिस्थितियां हमारी स्वयं की ही तो पैदा की हुई हैं।

हर हाल में मस्त रहना सीखो। परिस्थिति तो आयेंगी। सुख–दुख भी आयेंगे। इनको तुम टाल नहीं सकते। तो फिर क्यों घबराते हो। रो कर काटो या हँस कर काटना पड़ेगा। जो भी मिलता है सब भाग्य से मिलता है। जितना मिलना था हमें मिल गया उसी में प्रसन्न रहना सीखो। जब मेरे भाग्य में इतना मिलना लिखा है तो क्यों दुखी होऊँ ठीक है जैसी परमात्मा की इच्छा। बस जो है जैसा है उसी में आनन्द मनाओ। किसी दिन भूखा रहना पड़ जाय तो सोचो कि आज भगवान ने मुझे उपवास कराया है। मुझे औरों से कहीं अच्छा मिला है। एक आदमी के आँखें नहीं हैं। लेकिन मुझे तो भगवान ने दोनों आँखें दीं है। कोई लंगड़ा है लेकिन मुझे तो प्रभु ने दोनों टांगे दी हैं, कितना मूल्यवान शरीर दिया है। इसमें आनन्द मनाओ। बच्चा गलत संग में फंस गया। एक बार उसको समझा दो। फिर भी नहीं माने तो दोबारा फिर समझा दो। कुछ दिन बाद फिर समझा दो फिर भी न समझे तो उसको उसके भाग्य पर छोड़ दो। लेकिन अपने आपको दु:खी मत करो। हम इस दुनिया में आये केवल अपना फर्ज निभाने। किसी का बेटा बने हैं तो बेटे का हमें फर्ज पूरी ईमानदारी से निभाना है। किसी के पति बने हैं तो अपने परिवार की

पूरी व्यवस्था सुचारु रूप से चलाओ। ईमानदारी की रोटी कमा कर खिलाओ। ऐसा पार्ट अदा करो जैसे सिनेमा में एक कलाकार अपना पार्ट अदा करता है। वो जानता है कि मुझे केवल इस पिक्चर में ये रोल करना है पिक्चर पूरी होने पर मुझे इस रोल से कोई मतलब नहीं रहेगा। केवल तीन घण्टे का पार्ट अदा करना है। ठीक उसी तरह।

इस जन्म के जो रिश्तेदार बने हैं, जो घर परिवार बना है उनसे केवल इस जन्म का ही रिश्ता है। ये सब छूटने वाले हैं। हमारा जिसके साथ स्थाई रिश्ता है जो हमारा था, हमारा है और हमारा रहेगा वो परमात्मा है, ईश्वर है, वो ही हमारा स्थाई रिश्तेदार है। उससे सम्बन्ध बनाओ, उसको हमेशा याद रखो। घर का परिवार का कार्य करते हुए भी उसको मत भूलो उसी की कृपा से ये मनुष्य जन्म मिला। उसी की कृपा से ये कुल खानदान मिला उसने ही हमको इनके साथ सम्बन्ध जोड़ कर भेजा है। अपना कर्तव्य हमको निभाना है। जब हमारा समय पूरा हो जायेगा ये नाटक जो हम कर रहे हैं वो भी समाप्त हो जायेगा। जिन्दगी एक नाटक है और हम इस नाटक में काम करने वाले कलाकार हैं। इस नाटक को असली मत मानो वरना फंस जाओगे। फंसने के बाद ही हम सुख, दुख का अनुभव करने लग जाते हैं। क्योंकि हमने अपने आपको कर्ता मान लिया। ये धारणा पक्की कर ली कि ये सब मैं कर रहा हूँ। इसमें मैं के अहंकार में फंस कर हम सुखी दुःखी होने लगते हैं। ये ही सबसे बड़ा अज्ञान है। झूठ को सच मानना ये हमारी सबसे बड़ी भूल है।

इस अज्ञान रूपी अंधकार से निकलने के लिए एक प्रकाश की किरण चाहिए। जिससे ये अंधेरा दूर हो। ये प्रकाश कहां से मिलेगा? कौन है जो हमको इस अंधकार से निकाल सके। वो है परमात्मा का भेजा हुआ दूत, परमात्मा की जब कृपा होती है तब ये दूत गुरु बन कर हमारे अन्दर ज्ञान का प्रकाश भरने आते हैं। ये हैं वो सद्गुरु जो अज्ञान रूपी अंधकार को दूरकर हमारे अन्दर ज्ञान रूपी प्रकाश भरते हैं। जन्म–जन्म से बिछड़े हुए साथी से हमको मिलाते हैं। हमको हमारी पहचान कराते हैं। आत्मज्ञान देकर हमको जन्म–मरण के चक्र से छुटकारा दिलाते हैं। हमारा असली स्वरूप आनन्द स्वरूप को बता कर सदा आनन्द में रहना सिखाते हैं। योगी गुरु हमें योग का ज्ञान देकर योग विज्ञान के चमत्कारिक अनुभव कराते हैं। योग ही वो शक्ति है जिससे हमे मुक्ति मिलती है। सच्चा जीवन जीने की कला योग में है।

योग द्वारा समाधि लाभ मिलता है। योग ही मुक्ति देने वाला साधन है। योग साधन द्वारा हम हमारे पुराने कर्म बीज का नाश भी करते हैं। ध्यान करने से हमारे संस्कार कटते हैं। हमारी वासनायें मिटती हैं। ये वासनायें ही हमको जो सबसे बड़ा दुख है जन्म का और मृत्यु का अनुभव कराती हैं। गुरुमंत्र के जाप से व ध्यान से ही ये वासनाएँ क्षीण होती चली जाती है। जब ये सारी वासनाएँ नष्ट हो जायेंगी तब ही हमारा जन्म–मरण का चक्र समाप्त होगा। लेकिन ये तभी संभव है जब गुरुदेव द्वारा बताये नियम का पूरी तरह पालन करेंगे। नित्य प्रति दैनिक कार्य की तरह इसको भी महत्वपूर्ण कार्य समझकर प्रातः व रात्रि को साधना करनी है। जैसे हमारे दैनिक

जीवन में खाना–पीना, अपना व्यवसाय करना – इनको हम रोज नियमित बिना नागा करते हैं ठीक उसी तरह अपनी ध्यान साधना को नियमित बिना नागा के करनी है।

जैसे शरीर के लिए भोजन जरूरी है वैसे ही आत्मा के लिए भजन जरूरी है। योग साधना बहुत ही सरल साधना है। इसमें ना कोई सामग्री की जरूरत है ना माला की। ना किसी मन्दिर में पूजा पाठ करना है ना किसी कर्मकाण्ड में पड़ना है। बहुत ही सरल साधना है प्रातः उठो अपने शरीर की शुद्धि करो ताकि आलस्य न रहे और आसन लगा कर बैठ जाओ। बस साधना शुरू, गुरु मंत्र का जाप करो। बाकी के सब कार्य गुरुदेव अपनी शक्ति से अपनी कृपा से अपने आप करवा लेते हैं। ज्यों–ज्यों आपकी साधना बढ़ेगी त्यों–त्यों आपके अन्दर परिवर्तन होने लगेंगे। आप अपने लौकिक कार्य में उन्नति करते चले जायेंगे। आप के कई बिगड़े कार्य अपने आप बनने लग जायेंगे। आध्यात्मिक व लौकिक दोनों में आपकी उन्नति होती चली जायेगी। आपकी मन की शक्ति बढ़ेगी। जब मन एकाग्र होने लगेगा मन की शक्ति, मन का पावर बढ़ेगा। जो भी विचार किया या जो भी आपके मन में संकल्प आया वो ही पूरा होता जायेगा। लेकिन ये तभी संभव है जब आप पूर्ण लगन से, तत्परता से और गुरु के प्रति श्रद्धा से विश्वास से इस साधना को करोगे।

साधना से हमारे अन्दर भी शक्ति पैदा होती है। चाहे कैसी भी कठिन परिस्थिति आ जाये लेकिन वो आपको विचलित नहीं कर सकती। आपको दुःखी नहीं कर सकती और वो आसानी से निकल जायेगी। कैसा भी संकट आये उसमें साधक घबरायेगा नहीं क्योंकि उसके साथ गुरुदेव की कृपा और साधना की शक्ति है गुरुदेव के प्रति होने वाली श्रद्धा हमको हर समय, हर मोड़ पर साथ देती है। कठिन परिस्थितियों में ये श्रद्धा हमारी रक्षा करती है। यदि साधक के साथ ऐसा होने लग जाये तो फिर कभी किस बात की रहेगी। फिर तो आनन्द ही आनन्द है। दुःख और क्लेश का नामो निशान भी नहीं रहेगा। लेकिन ये तभी होगा जब गुरुदेव के प्रति व उनकी वाणी पर पूर्ण विश्वास, पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण समर्पण होगा। ये आप भी अपने जीवन में अपना के देखो, इस पथ पर चल कर देखो जीवन सुधर जायेगा। जीने का मजा आ जायेगा। ये शरीर बहुत मुश्किल से मिला है। इसका सदुपयोग करो इसको व्यर्थ के विषय भोगों में या संसार की झूंठ चकाचौंध में मत फंसाओ। ये बहुमूल्य जीवन है। इस शरीर से हमारा उद्धार हो सकता है। पतन के मार्ग में मत पड़ो जन्म–मरण के इस भयंकर दुःख से छुटकारा पा लो। ये शरीर और ऐसे सद्गुरु बार–बार नहीं मिलेंगे।

मानुष जीवन अनमोल रे, माटी में मत घोल रे।

एक महत्वपूर्ण बात और बताना चाहता हूँ कृपया बड़े ध्यान से गौर करना – जब हम पर कोई मुसीबत आती है, दुःखदायी परिस्थिति आती है, गृह क्लेश, रोजगार का अभाव, बच्चों की शादी न होना ऐसी परिस्थिति में अक्सर लोग किसी अच्छे पंडित, ज्योतिषी के यहाँ जाकर अपने गृह गोचर दिखाते हैं। पंडित जी राहू–शनि की खराब दशा बता कर उसको आदेश देते हैं

कि ग्यारह दिन के सात पंडितों के द्वारा अनुष्ठान करवा लो। तब मनुष्य बेचारा उनके चक्कर में आकर ये काम करने को मजबूर हो जाता है। देखिये ऐसे समय में बुद्धि भी भ्रमित हो जाती है। गुरुदेव से दूरी बढ़ने लगती है। वो सोचता है गुरु बनाया कि हमारे हर कार्य को सहजता से करवा दिया करेंगे लेकिन इतने दिनों से गुरुजी के ढोक लगाई लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ और वो व्यक्ति उनसे दूरी बनाने लगता है। पंडितों की बातों में विश्वास करके उनसे अनुष्ठान करवाने लगता है।

अब आप मेरी बात पर विश्वास करके जो मैं बताऊँ वो कार्य करो तो आपका कोई भी कठिन कार्य हो अवश्य पूरा होगा। आपको कुछ नहीं करना। जो पंडित जी ने बताया ग्यारह दिन के अनुष्ठान वो अनुष्ठान बिना किसी खर्चे के बिना किसी हवन–पूजन सामग्री के आप स्वयं करो और करना क्या है केवल गुरुमंत्र का जाप और ध्यान, बस। आप मंदिर में सजी पत्थर की मूर्ति पर जब श्रद्धा कर सकते हो तो नर रूप में आये नारायण स्वरूप गुरुदेव पर क्यों नहीं करते। हमारा कल्याण करने को ही परमात्मा ने हमारे पास सद्गुरु को भेजा है और हम उनकी कृपा को, न पहचान कर उनको अविश्वास भरे मन से देखते हैं। आप गुरुदेव पर पूर्ण विश्वास करके उन पर पूरी श्रद्धा रखते हुए किसी भी कार्य के निमित्त अपना अनुष्ठान शुरू करो मेरा दावा है गुरुदेव की कृपा से आपका अनुष्ठान पूर्ण सफल होगा।

• • •

श्री रामनवमी महोत्सव

सभी गुरुभाइयों / बहिनों को यह सू[illegible]रते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज का प्राकट्य दिवस योग महामेला के रूप में 17, 18 व 19 अप्रैल 2013 तदनुसार बुद्धवार, वृहस्पतिवार व शुक्रवार को बड़े ही धूम धाम से श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम में मनाया जा रहा है। चैत्र नवरात्रारम्भ 11 अप्रैल 2013 से प्रारम्भ हो रहा है।

सभी श्रद्धालु गुरुभाई बहिनों से निवेदन है कि उक्त तिथियों में सवाँई धाम में आकर सत्संग लाभ लें तथा पुण्य के भागी बनें। जय गुरुदेव की!

इसे ही आमन्त्रण पत्र समझें।

प्रार्थीगण

आश्रमवासी साधक

श्रद्धांजली - आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

– अवनीश भटनागर, सहारनपुर

बड़े गुरुभाई लोग श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा घटित दिव्य लीलाओं के साक्षी एवं चलता फिरता साहित्य ही होते हैं। गुरु लीलाओं एवं सिद्धान्तों को अपने से बाद में आने वाले लोगों को समझाकर श्री गुरु चरणों में प्रेरित करते हैं। आचार्य श्री चन्द्रहास जी श्री सद्गुरु देव जी के आकर्षण से श्री सद्गुरुदेव जी के श्री चरणों में आये थे और कानपुर में श्री सद्गुरुदेव जी से तीव्र शक्तिपात प्राप्त करके अन्तरंग योग में प्रवेश पाया था। अन्तरजगत की दुनिया से परिचय पाने के बाद उन्होंने ध्यान यो" मन्त्र योग, लय योग, सिद्ध योग, कुण्डलनी योग पर अपने विचारों से साधकों को लाभ पहुँचाया।

कानपुर, सहारनपुर, दिल्ली, कांगड़ा, झाँसी, कालपी आदि अन्य स्थानों के योग शिविरों में योग एवं गुरु भक्ति की धारा प्रवाहित करते रहे। लाल बहादुर संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली में प्राचार्य रहे। वर्तमान में भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय के अन्तर्गत योग एवं तकनीकी विभाग में कार्यरत थे। गत 30 दिसम्बर को कांगड़ा (हि.प्र.) के योग शिविर के समापन के अवसर पर सबको विदाई देने के पश्चात् स्वयं भी विदाई का प्रसाद ग्रहण करने के बाद उन्होंने भी इस नश्वर संसार से विदाई ले ली। एक ही क्षण में उनके प्राण कोष एवं चेतन तत्व ने स्थूल शरीर छोड़ दिया और गुरु तत्व में लीन हो गये। सिद्धयोग पत्रिका में श्री सद्गुरुदेव जी के समय से ही पाठकगण इनके योग परक विचारों से लाभ लेते रहे हैं।

●●●

महाकुम्भ 2013 का पर्व सम्पन्न

इस वर्ष महाकुम्भ का पावन पर्व के उपलक्ष्य में अपने श्री सिद्धगुफा आश्रम सवांई तथा इसकी शाखा इलाहाबाद का गुरुदेव का नाम का शिविर 14 जनवरी मकर संक्रान्ति से माघी पूर्णिमा तक लगाया गया। अपने कैम्प में भी गुरुभाई बहिनों की बड़ी संख्या में आवागमन रहा। सभी साधकों के लिए आश्रम की ओर से ठहरने तथा भोजन की सुव्यवस्था रही। मुख्य रूप से ऋषिकेश आश्रम के आचार्य श्री पूर्णचन्द जी का सहयोग उल्लेखनीय रहा। इसके साथ–साथ श्री सिद्धगुफा सवांई आगरा के व्यवस्थापक व आचार्य श्री दासलाल, सहारनपुर से ब्रह्म. राजनरेश शुक्ला, बुलन्दशहर से श्री अनिल शर्मा, गोवर्धन से श्री मोहन स्वरूप तथा पं. योगेश जी आदि गुरु भक्तों का सहयोग भरपूर रहा। अपना शिविर सैक्टर 5 में त्रिवेणी मार्ग पर लगा हुआ था। प्रात: सायं योग साधना व प्रवचन आदि का कार्यक्रम रहा। व्याख्यान कर्ताओं में श्री दासलाल जी एवं वीरेन्द्र स्वरूप के योगपरक व्याख्यान चलते रहे। 25 फरवरी के माघी स्नान के पश्चात् शिविर का समापन हो गया। इस प्रकार से महाकुम्भ का पर्व सम्पन्न हो गया।

●●●

योगी श्री कृष्णानन्द जी

(योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज)

योगी श्री कृष्णानन्द जी की योगिक साधना के विवरण के साथ ही पढ़िये इस लेख में श्री गुरुदेव जी की साधना के उनके अपने अनुभूत संस्मरण भी।

– सम्पादक

हरिद्वार एवं ऋषिकेश जैसे पावन–स्थलों की यात्रा करने वाले प्राय: सभी तीर्थ–यात्री स्वर्गाश्रम गीता भवन एवं परमार्थ–निकेतन जैसे प्रेरणाप्रद स्थलों से परिचित हैं। ऐसे महानुभावों को कदाचित् ध्यान होगा कि परमार्थ–निकेतन एवं गीता–भवन के मध्य एक छोटा सा आश्रम स्थित है। उस आश्रम के संस्थापक एक सन्यासी महात्मा हैं, उन्हीं का चरित मैं यहाँ लिखने जा रहा हूँ। यह महात्मा ही योगी कृष्णानन्द जी हैं। अब तो वे सन्यासी हो गए हैं। इस आश्रम को ग्रहण करने से पूर्व इन्होंने योग–दीक्षा उन्हीं योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज से प्राप्त की है, जो मेरे भी सद्गुरु महाराज हैं। इस सम्बन्धानुसार यह मेरे गुरु–भाई होते हैं, अत: इनके विषय की कई अद्भुत घटनाओं का मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है।

भाई कृष्णानन्द जी का पूर्व नाम श्री रतनलाल था। इनका जन्म पवित्र अग्रवाल घराने में, मुजफ्फरनगर नामक नगर में हुआ था। रतनलाल जी कुछ घरेलू झगड़ों से विरक्त होकर भ्रमणार्थ ऋषिकेष आए थे। इनके घर में कथा–कीर्तन सत्संग महात्माओं के सदुपदेश समय–समय पर हुआ करते थे। कुछ पूर्व–संस्कार इस प्रकार के थे कि इनके मन में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया और इन्हें घरेलू झंझटों को सदा के लिए त्याग देना ही उचित लगा। ऐसा निश्चय करके यह उत्तराखण्ड की यात्रा करने के लिए चले गये। संसार छोड़ कर चले थे, अत: जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग दिखाने वाले किसी परिपूर्ण योगाचार्य की आवश्यकता अनुभव करने लगे।

उत्तराखण्ड की यात्रा से विचरते–विचरते रतनलाल जी फिर ऋषिकेष आ पहुँचे। अब इनके मन में यह तीव्र लगन लग गई थी कि इनको किसी परिपूर्ण सद्गुरुदेव जी के दर्शन प्राप्त हों। इसी प्रकार के योगाचार्यों की खोज में इनका यत्र–तत्र भ्रमण चलता रहता था। बड़े–बड़े मण्डलेश्वरों एवं मठाधीशों के दर्शन भी इनके मन को वांछित शान्ति–लाभ न करा सके। उपदेष्टा तो सभी थे, किन्तु किसी ऐसे योगैश्वर्य सम्पन्न सद्गुरुदेव के दर्शन नहीं मिले, जो – दिव्यं ददामि ते चक्षु: पश्य मे योगेश्वर्यम्" – को प्रतिज्ञापूर्वक कहता हुआ अनुभूति–मार्ग में प्रवृष्टि करा सकता। घूमने पर भी जब इन्हें मनोनुकूल योगिराज के दर्शन प्राप्त नहीं हो सके, तो इन्हें स्वाभाविक ही निराशा होने लगी। अब उनका यह विचार बनने लगा था – ऋषिकेश में उनको कोई पथप्रदर्शक नहीं मिलेगा। अत: अब घर ही क्यों नहीं लौट चलें? व्यर्थ भगवा–वस्त्र

पहिन साधु बन भिक्षाटन करने से क्या लाभ? इससे तो घर पर व्यापार आदि सांसारिक कार्य करते हुए ही जीवन व्यतीत कर लेंगे।

एक दिन इसी विचार में निमग्न, निराश हुए रतनलाल जी रेलवे स्टेशन की ओर जा रहे थे। अन्ततः घर लौट जाने का ही निश्चय कर लिया था। मार्ग में अचानक उनके नेत्रों ने एक स्थान पर लिखा देखा – श्री योग–साधन आश्रम। चलते–चलते पैर रुक गये, मानो हठात् किसी ने रोक लिया हो। उस जगदात्मा ने भी बिल्कुल निराश करके ही शायद प्राणी को अभीष्ट–प्राप्ति कराया है। 'योग–साधन आश्रम' शब्द पढ़ते ही इनको लगा, मानो जो खोज रहे थे, वह मिल गया है। आश्रम के भीतर प्रवेश करके सब कुछ ज्ञात करने की तीव्र इच्छा इनके मन में जाग उठी। उन्हें पूर्ण विश्वास–सा हो रहा था कि अवश्य ही कोई परिपूर्ण योगिराज इस आश्रम में निवास करते हैं। ऐसा विचार करके भाई रतनलाल जी ने आश्रम में धीरे–धीरे प्रवेश किया। सामने ही आराम कुर्सी पर विराजमान श्री प्रभुजी के दर्शन कर इनको लगा– जिसकी खोज थी, वह मिल गए हैं। अन्य आश्रमों से भिन्न इस प्रकार के पवित्र वातावरण वाले आश्रम में प्रवेश करने का रतनलाल जी का यह प्रथम अवसर था। सायंकाल लगभग पाँच बजे का समय था, यह आश्रम का सत्संग का समय रहा करता था। इस कारण श्री प्रभुजी के आस–पास बैठे सत्संगी भाई–बहिन ध्यानादि की कुछ चर्चाएँ कर रहे थे। दूसरी ओर एक भाई श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में बैठकर दूर नगरों में रहने वाले सत्संगियों के आए पत्रों को पढ़कर सुना रहे थे। उन पत्रों में बड़े–बड़े ध्यानानुभव लिखे थे। यह सब देख सुनकर रतनलाल जी का हृदय श्री प्रभुजी के पावन चरण–कमलों की ओर और भी अधिक आकर्षित हुआ। उन्होंने अत्यन्त विनम्र–भाव से श्री प्रभुजी से प्रार्थना की– प्रभुजी, आप करुणासागर हैं। कृपा करके मुझे भी अपनी शरण में ले लीजिए।

भाई रतनलाल जी की होनहार अच्छी थी। इनकी इस विनम्र प्रार्थना पर श्री प्रभुजी मुस्करा पड़े और मुखारविन्द से स्वीकृत सूचक "अच्छा" शब्द निकल गया। दूसरे दिन साधारण पत्र–पुष्प स्वीकार कर अनन्त शक्ति सम्पन्न श्री प्रभुजी ने भाई रतनलाल को शक्तिपात–दीक्षा दी। जिसके फलस्वरूप उनमें बड़ी तीव्रगति से शक्ति संचारित हुई। श्री प्रभुजी ने उन्हें कुण्डलिनी योग का उपदेश देकर मूलाधार कमल में श्री गणपति जी का ध्यान करने का आदेश दिया। अब भाई रतनलाल जी श्री प्रभुजी के आदेश के अनुसार अपना ध्यानाभ्यास करने लग गए और उत्तरोत्तर प्रगति करने लगे। जैसे–जैसे ध्यानाभ्यास परिपक्व होता गया, वैसे–वैसे ही मूलाधार कमल के प्रत्यक्ष दर्शन उनको बने रहने लगे। कुछ ही समय में भाई रतनलाल जी का आश्चर्यजनक रूप से काया–कल्प ही हो गया। वह हर समय ध्यानस्थ रहने लगे। पान खाने और बीड़ी पीने का इनका विशेष व्यसन भी ध्यान की उच्चतम स्थिति में स्वतः ही छूट गया। उन्हें कण–कण में मूलाधार कमल के दर्शन निरन्तर बने रहने लगे। साराश यह कि संसार भूल गया, केवल ध्यान में दीखने वाले की स्मृति रहने लगी। भाई रतनलाल जी

की ऐसी उच्च–स्थिति इतनी शीघ्र बन गई कि सारे ही आश्रमवासी आश्चर्य करने लगे। उनके मुखमण्डल पर हर समय एक विशेष तेज विराजमान रहने लगा। ध्यान की उच्चतम स्थिति में उनको हिमालय के अनेक सिद्धों के दर्शन एवं कई प्रकार के वरदान प्राप्त हुए। यह बड़े ही आश्चर्य का विषय था कि दो मास पूर्व का एक साधारण गृहस्थ व्यक्ति, इतने अल्प समय में ही अत्यन्त उच्चकोटि का सन्त बन गया है। आश्रमवासी प्रायः देखा करते थे – ध्यानस्थ रतनलाल जी के शरीर पर से निस्संकोच बिच्छू व सर्प गुजर जाते हैं, परन्तु उनको किसी प्रकार की भी चेतना नहीं हो रही है।

चक्कू की तलाश

लीलाप्रिय आनन्दकन्द श्री प्रभुजी यदाकदा अपने बालकों का मान बढ़ाने के लिए खेल किया करते थे। खेल–खेल में ही सर्वसाधारण के समक्ष अपने बालकों की अद्भुत शक्तियों का प्रदर्शन कर दिया करते थे। फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति जान लेता था कि इन बालकों के भीतर किसी महती शक्ति का प्रवेश है। एक बार श्री प्रभुजी ने एक ऐसा ही खिलवाड़ किया।

श्री प्रभुजी मध्यान्ह–काल में भोजन करके उठे थे। भाई रतनलाल जी ध्यान से उठकर दीवार के एक कोने को पकड़े, इस आशा में खड़े थे कि श्री प्रभुजी के आने पर चरणारविन्दों में नमस्कार करूँगा। वह उसी द्वार के मार्ग में खड़े थे, जिससे प्रभुजी अन्दर जाया करते थे। आज श्री प्रभुजी को खिलवाड़ सूझा– अतः नित्य वाले द्वार से न जाकर दूसरे ही द्वार से धीरे से अन्दर जाकर अपने सिंहासन पर बैठ गए। श्री प्रभुजी ने ऐसा इसलिए किया था जिससे रतनलाल उनको देख न पाएँ और यही समझते रहें कि अभी श्री प्रभुजी भोजन ही कर रहे होंगे। किन्तु ऐसा नहीं हो सका, जैसे ही श्री प्रभुजी सिंहासन पर विराजमान हुए त्यों ही अकस्मात् रतनलाल जी दीवार से हटकर श्री प्रभुजी के चरण–कमलों में पड़े दिखलाई दिए। वहाँ पर बैठे सभी सत्संगी भाइयों ने इस आश्चर्य को देखा कि किसी अव्यक्त शक्ति ने उनके मन को घुमाकर श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों की ओर आकर्षित कर दिया था। सभी आश्चर्य में पड़ गए और अत्यन्त विनयपूर्वक श्री प्रभुजी के चरण कमलों में जिज्ञासा प्रगट करने लगे – प्रभुजी, रतनलाल जी को यह बोध किस प्रकार हुआ।

श्री प्रभुजी ने कहा – रतनलाल में यह सामर्थ्य है कि वह इस प्रकार की सब बातों को जान सके। श्री प्रभुजी के मुखारविन्द से यह वचन निकलने पर उन सभी के मन में यह लालसा उत्पन्न हुई कि वे कोई ऐसी विलक्षण घटना देखें जिससे इस कथन की पुष्टि हो।

अन्तर्यामी श्री प्रभुजी उन लोगों के मन के भाव समझ गए और एक ऐसा ही अवसर उपस्थित हो गया। आश्रम का एक चाकू खो गया था। कई घण्टे से उसकी तलाश की जा रही थी, परन्तु मिल ही नहीं पा रहा था। सहसा उन सभी आश्रमवासियों के मन में अभिलाषा हुई कि रतन लाल जी अपनी ध्यान–दृष्टि से उस चक्कू के स्थान की तलाश करें। उन सबके मानस–अभिप्राय को समझकर श्री प्रभुजी थोड़ा हँसे और भाई रतनलाल जी से कहने लगे –

अरे रतन, जब इन सबकी यही इच्छा है, तो तू उस चाकू की तलाश कर ही दे। श्री प्रभुजी की आज्ञा पाते ही रतनलाल जी उठ पड़े। नेत्र बन्द किए हुए ही उस स्थान पर आ पहुँचे जहाँ वह चाकू पड़ा हुआ था, आँखें बन्द ही किए उन्होंने वह चाकू उठाकर सबको दिखा दिया। इस घटना से अचरज में पड़े उन सभी लोगों ने यह जान लिया कि भाई रतनलाल में कितनी बड़ी शक्ति है।

अस्तु, इस प्रकार की अन्यान्य घटनाएँ भी घटती रही हैं। अपने अन्दर इस प्रकार के दिव्य–विकास को देखकर भाई रतनलाल जी का अभ्यास और वैराग्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। अपने ध्यानाभ्यास में उन्होंने कई प्रकार के दिव्य–मन्त्र, गुप्त–क्रियाएँ और दिव्य औषधियों को सिद्धों के द्वारा प्राप्त किया था। उनकी निर्विचारसमाधि की निर्मलता में उत्तरोत्तर ऋत का प्रकाश होता चला गया। उनके ध्यानानुभव उत्तरोत्तर सत्य होने लगे। साधक को प्रारम्भ में जो अनुभव होते हैं उनमें यत्किंचित् अपने मन का भी समावेश रहा करता है। अतः उस काल के अनुभव पूर्णतः सत्य नहीं हुआ करते। उत्तरोत्तर अभ्यास के पश्चात् ही अनुभवों में पूर्ण सत्यता आ पाती है।

●●●

मुण्डकोपनिषद् का तत्व ज्ञान

इस उपनिषद् में शौनका को उनके गुरु अंगिराज द्वारा दिये गये उपदेश सम्मिलित हैं :–

• हमारे कान वही सुनें जो अच्छा हो, हमारी आँखें वहीं देखें जो अच्छा हो। हम जब तक जीवित रहें हमारी भुजायें और शरीर सुदृढ़ रहें, हम सदा सुखी रहें और परम पिता परमात्मा का गुणगान करते रहें। सभी देवताओं की हमारे ऊपर अनुकम्पा बनी रहे। हमारे हृदय में सदैव शान्ति का श्रोत प्रवाहित होता रहे।

• शिक्षाप्रद दो ही प्रकार का विज्ञान है जिसको विद्वानों ने उत्कृष्ट और अधोगत कहा है। वेद– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, धर्म–कर्म सम्बन्धी साहित्य, व्याकरण, शब्द रचना विज्ञान, दार्शनिक प्रणाली, तारों की विद्या आदि की गणना उत्कृष्ट विज्ञान और अन्य शिक्षाप्रद पठनीय सामग्री को अधोगत बताया गया है।

ध्यान देने योग्य है कि उत्कृष्ट विज्ञान यथार्थवाद से परिपूर्ण है। हमारे वेद ही विश्व ज्ञान कोष हैं एकमात्र भजन–पुस्तक ही नहीं।

देह और देही ?

– परमहंस स्वामी योगानन्द

अत्यन्त मलिनो देहो, देही चात्यन्त निर्मलः।
असंगोऽहमिति ज्ञात्वा, शौचमेतत्प्रचक्षते।।

अर्थ :– देह अत्यन्त मलिन है और देही – आत्मा अत्यन्त शुद्ध है, इसलिए मैं असंग हूँ ऐसा जानना इसी को शौच कहते हैं।

शेष परब्रह्म को दिखलाकर जिसका त्याग हुआ है ऐसे ज्ञानाज्ञान–अविद्या और उसका कार्य ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड शरीर है और शरीर ब्रह्माण्ड है। शरीर छोटा और व्यक्तिरूप है, ब्रह्माण्ड बड़ा और समष्टि रूप है, एक शरीर को समझाने से ब्रह्माण्ड समझा जाता है इससे शरीर का वर्णन करते हैं। यह शरीर अत्यन्त मलिन है क्योंकि मलिन स्थान से उसकी उत्पत्ति हुई है, मलिन पदार्थों से भरा हुआ है, वर्तमानकाल में भी मलिन ही रहता है और मृत्यु में मलिन–अपवित्र होता है, उसको छूने वाले मलिन होने से ही छूकर स्नान करते हैं। स्थूल शरीर, अस्थि, मांस, चर्म, मेद, रक्त, मज्जा, मूत्र, मल और लालादिक से भरा हुआ है, क्षण–क्षण में विकार को प्राप्त होता रहता है, अनेक व्याधियों का स्थान है, उत्पत्ति, स्थिति और नाश वाला है।

सूक्ष्म शरीर काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर आदि दुःखकर दुष्ट वृत्तियों का होने से अशुद्ध है और कारण शरीर अज्ञान स्वरूप जड़ होने से अपवित्र है इसी प्रकार दोनों शरीर सहित स्थूल शरीर अत्यन्त अपवित्र है।

शरीर का प्राप्त होना ही अशुद्धि का प्राप्त होना है, अविद्या अशुद्धि होने से अविद्या और अविद्या का कार्य रूप शरीर अपवित्र है, ऐसे शरीर की शुद्धि किसी प्रकार नहीं हो सकती। जो उसे शुद्ध करने का प्रयत्न करते हैं वे मल–मूत्र को धोकर शुद्ध करने वाले के सामने हैं शरीर अशुद्ध है और आत्मा अत्यन्त निर्मल शुद्ध है ऐसा देखने वाला ठीक–ठीक देखता है। आत्मा शुद्ध साक्षी है; शरीर में रहकर भी असंग होने से शरीर की मलिनता आदि दोषों से लेपायमान नहीं होता। जैसे मृत्तिका का घट अशुद्ध पदार्थ भरने से अशुद्ध होता है, परन्तु उसमें रहा हुआ आकाश अशुद्ध नहीं होता तैसे देह की मलिनता से देह में रहा हुआ आत्मा मलिन नहीं होता, और जैसे घट को धोकर साफ करते हैं तब उस धोने की क्रिया का स्पर्श आकाश को नहीं होता वैसे ही शरीर की सफाई का स्पर्श आत्मा को नहीं होता।

देह की अशुद्धि का प्रायश्चित देही–आत्मा को नहीं है। आकाश सब स्थानों में सब पदार्थों में रहा हुआ है तो भी असंग होने से पदार्थों की मलिनता से मलिन नहीं होता, इसी प्रकार आत्मा में स्वर्ग–नरक बंध मोक्ष और सुख दुःखादि द्वन्द्व नहीं होते। आकाश शुद्ध और असंग है तो भी अविद्या का कार्य होने से जड़ और अशुद्ध ही है और आत्मा तो सत्स्वरूप होने से

स्वाभाविक ही शुद्ध स्वरूप है।

आत्मा की शुद्धता का आरोप अविद्या से देह में किया जाता है और अविद्या से शरीर की अशुद्धता का आरोप देही आत्मा में किया जाता है ऐसा अन्योन्याध्यास ही देही–जीव के दुःखी होने का कारण है, वास्तव में तो देही शुद्ध है और देह अशुद्ध ही है। जैसे देह अशुद्ध होने से शुद्ध नहीं हो सकता ऐसे देही–शुद्ध स्वरूप आत्मा किसी प्रकार किसी से अशुद्ध नहीं हो सकता।

जब देह से अहं भाव रूप बुद्धि के पाप की निवृत्ति होती है तब ही अखण्ड निर्मल असंग सब प्रकार से पूर्ण ब्रह्म का स्फुरण होता है, मैं ब्रह्म हूँ, सत हूँ, असंग हूँ, आनन्द स्वरूप हूँ, अबाधित चैतन्य स्वरूप हूँ'' ऐसा दृढ़ अपरोक्ष आत्म–ज्ञान होना ही पवित्रता है। ऐसे ज्ञान से ही शरीरादिक अहं भाव और मम भाव रूप मल का त्याग–शौच हो जाता है। देह में ''मैं हूँ'' ऐसा भाव अपवित्रता है उसका त्याग करके देही जो आत्मा है उसमें ''मैं हूँ'' ऐसा दृढ़ भाव होना पवित्रता है।

• • •

• संस्कार तथा त्याग मनुष्य को घुमाते रहते हैं लेकिन निश्चित लक्ष्य की ओर नहीं ले जाते। केवल स्वयं की समझने की शक्ति बुद्धि ही लक्ष्य तक पहुँचा सकती है। जहाँ तक त्याग का प्रभाव जटिता का सर्वमान्य विश्वास का सम्बन्ध है, यद्यपि धृष्टता पूर्वक खण्डन नहीं किया जा सकता। उपनिषद् में शिष्टतया अलग वर्णित है। सत्यता और अविनाशी आनन्द का मार्ग।

कथा उपनिषद् में मूर्खों की अपने को विद्वान बताने की कल्पना शक्ति यहाँ कुछ हेर–फेर के साथ वर्णित है। महत्वपूर्ण शब्द अविद्या जो कथा, ईशावास्य उपनिषद् या गीता में भी आया है उस पर भी प्रकाश डाला गया।

• ऐसा अनुभव करते हुए, अन्वेषक को अनित्य या क्षणिक वस्तुओं की अपनी इच्छाओं और आसक्ति को पूर्ण रूप से छोड़ देना चाहिए और योग्य एवं मर्यादायुक्त शिक्षक से उच्च शिक्षा से उपार्जित करनी चाहिए।

लोक गीत

– भूपेन्द्र 'अंकुश', जलेसर

श्यामजू ने नाथ लियो री ! काली ।
जमुना कर दई विष से खाली ।। टेक ।।

नाय मारी वाके डण्डा लाठी ना दी उसको गाली ।
रमणक द्वीप भेज दियौ काली सबकी विपदा टाली ।। 1 ।।

पीने योग्य बनायौ पानी, भर लोटा या थाली ।
गली गली चल खबर सुना दें बजा बजा कर ताली ।। 2 ।।

मोर मुकुट माथै पै, जाकी काली लट घुँघुराली ।
वंशी बजावत नाचत आयौ उछल उछल कर, आली ।। 3 ।।

जसुदा मैया कथा करावै, बाबा देखा–भाली ।
हलधर बाँटि सबको हलवा व 'अंकुश' की रखवाली ।। 4 ।।

●●●

संन्यास का अर्थ है, मृत्यु के प्रति प्रेम। सांसारिक लोग जीवन से प्रेम करते हैं, परन्तु संन्यासी के लिए प्रेम करने को मृत्यु है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम आत्महत्या कर लें। आत्महत्या करने वालों को तो कभी मृत्यु प्यारी नहीं होती है। संन्यासी का धर्म है समस्त संसार के हित के लिए निरंतर आत्मत्याग करते हुए धीरे–धीरे मृत्यु को प्राप्त हो जाना।

– स्वामी विवेकानन्द

कृष्णस्तु लीलामयः

(अनन्त श्रीविभूषित द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगदगुरु शंकराचार्य
स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज)

सामान्यतया लोक में अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाकर समाज को अपने किसी अन्य नाम रूप तथा कर्मों का बोध कराने की प्रक्रिया को 'लीला' कहते हैं। वैसे तो 'लीला' शब्द श्लेषण–अर्थ में पठित 'लीङ्' (लीङ् श्लेषणे) धातु के साथ 'क्रिप' प्रत्यय करने पर और आदान–अर्थ में पठित 'ला' (ला आदाने) इस धातु से 'क' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है – खेल क्रीड़ा, आनन्द, विनोद स्वेच्छाचारिता, रतिक्रीड़ा, सुविधा, बाल क्रीड़ा आभास एवं हाव–भाव आदि जिस समय जिस पात्र का रूप धारण करके व्यक्ति लीला करते हैं। उस समय समाज द्वारा वह व्यक्ति उसी पात्र के रूप में देखा समझा जाता है। नट–नटी अथवा अन्य किसी पात्र का वास्तविक रूप नहीं जान पाता है। जो यवनिका के अन्तर्गर्भ में प्रवेश करता है अथवा अपनी वास्तविकता को वे नट–नटी ही स्वयं जानते हैं, अन्य कोई नहीं, यदि ऐसा न हो तो नाटक के रस का बोध सामान्य जन को हो ही नहीं सकता। वस्तुतः यह सारा संसार भ्रम है। सच्चिदानन्द घन परमेश्वर का अंशभूत यह जीव अलग–अलग शरीर धारण करके विविध पात्रों के रूप में अपने वास्तविक रूप से अलग हटकर नामरूपात्मक अभिनय कर रहा है।

इसी प्रकार अशरणशरण अकारण करूबावरूवालय आनन्दकन्द सच्चिदानन्द परब्रह्म भी अनित्य भ्रमात्मक विश्वरूपी रंगमंच पर लोकहित हेतु अपने विविध नाम रूपों से नित्य लीलाएँ करते रहते हैं। किन्तु इनके वास्तविक स्वरूप को माया रूपी यवनिका के कारण हमारी सामान्य इन्द्रियाँ न देख पाती हैं और न समझ पाती हैं। ज्ञान भक्ति, कर्म ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य, स्नेह, सौहार्द एवं सौष्ठव की मूर्ति, रसस्वरूप, निखिल–ब्रह्माण्ड नियन्ता भगवान् की लीलाएँ अनेकानेक अवतारों के रूप में इस धराधाम के निवासियों को देखने को मिलती रहती हैं। सज्जनों की रक्षा, दुष्टों के विनाश, धर्म की स्थापना, अधर्म का उन्मूलन एवं प्रेम और सौमनस्य की स्निग्ध–स्नेहिल धारा को प्रवाहित करने के लिए भगवान कभी मत्स्य, वराह, नृसिंह तथा कच्छप बनते हैं तो कभी राम, कृष्ण अथवा परशुराम। भारतीय चिन्तन–परम्परा के विद्वद्–धुरीण मनीषियों का मत है कि भगवान के जो अनेक अवतार हैं, वे अलग–अलग कलाओं के हैं, किंतु श्री कृष्णावतार पूर्व कला का अवतार है। क्योंकि 'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्'। कंस के कारागार में जन्म के समय प्रहरियों का सो जाना वसुदेव द्वारा नवजात शिशु को नन्दबाबा के घर पहुँचाना, मार्ग में शिशु श्री कृष्ण के अंगुष्ठसंस्पर्श से यमुनाजल का शान्त होना बाद में खेलते–खेलते अपना अंगूठा पीना, शकटासुर–तृणावृत और पूतना राक्षसी को

दण्ड देना। माखन चोरी गोचारण, कालिय नाग का विनाश, कंसमर्दन, रासलीला, गोपीप्रेम, राधाप्रेम, ग्वालबालो की मैत्री, मथुरागमन, कालयवन जरासन्ध प्रभृतिका संहार, ब्राह्मण–सम्मान, राजदूत की भूमिका कुरूक्षेत्र की रणभूमि में महाभारत–युद्ध का संचालन, सारथी का कर्म, कौरव संहार, उत्तक ऋषि से वार्ता, द्वारकागमन, फिर प्रभासगमन यदुकुल का संहार तथा अन्त में भगवान के स्वधाम – गमन आदि लीलाएँ इतनी महत्वपूर्ण हैं कि सामान्य दृष्टि में श्री कृष्ण चन्द्र संसार के साथ बिलकुल बँधे–बँधे से दिखाई पड़ते हैं। उनकी बाल क्रीड़ा की एक झाँकी देखें –

विहाय पीयूषरसं मुनीश्वराः
ममांघ्रिराजीवरसं पिबन्ति किम्।
इति स्वपादाम्बुजपान कौतुकी।
स गोपवालः श्रियतामातनोतु वः।

अर्थात् बालकृष्ण अपने अँगूठे को पीने के पहले यह सोचते हैं कि क्या कारण है कि बड़े–बड़े ऋषि महर्षि अमृतरस को छोड़कर मेरे पादारविन्दरस का पान करते हैं। क्या वह अमृत से ज्यादा स्वादिष्ट है। इसी बात की परीक्षा के लिए शिशु कृष्ण निज–पद–पान–रूपी लीला किया करते हैं इसी प्रकार रासलीला का वर्णन करते हुए भागवतकार कहते हैं –

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमन्डल मण्डितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः।

तात्पर्य यह कि दो–दो गोपियों के मध्य में एक–एक श्री कृष्ण दीखते थे तथा हर गोपी ब्रजनन्दन को अपने समीपस्थ समझती थी। मण्डलाकार खड़ी गोपियों के साथ श्री कृष्ण ने नृत्य किया था इस सन्दर्भ में पद्मपुराणकार का मत है कि त्रेता के जिन ऋषियों की इच्छा राम के साथ रहने की थी वे सभी द्वापर में गोपी बन गये। अन्यत्र गोपियों को श्रुतियाँ तथा देवकन्याएँ आदि कहा गया है यथा –

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः,
दृष्टवा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन सुविग्रहम्
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्ना समुद्भूताश्च गोकुले।
तथा गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेय ऋषिना गोपकन्यकाः
देव कन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्यः कथं चन।।

परमार्थतः भगवान श्री कृष्ण पत्रपत्रभिवाम्भसा संसार से पूर्णतः निर्लिप्त हैं। वे दुनिया के सभी अनुबन्धों से ऊपर शुद्ध बुद्ध–मुक्त–चैतन्य हैं। वे अपने विराट स्वरूप के कारण महान से महत्तम और परमाणु से भी लघुतम हैं। वे असंख्यासंख्य ग्राहों से आक्रान्त भक्त–गजराजों

के रक्षक है और असहाय – दीन–आर्त भारतीय नारी की अस्मितालज्जा और गोरव को बचाने वाले भी हैं। वे एक ओर अपनी वंशी की सुरीली तान पर समग्र गोपाङ्गनाओं के चित्तापहारक हैं। तो दूसरी ओर निखिल विश्व के सबसे बड़े समर के दिशा–निर्देशक भी हैं। जिनके रोम–रोम में कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड समाहित है। भव भय हारी, विपिन बिहारी, मुरारी, बनवारी, नित्यलीलारस धारी, गोपी वल्लभ, यशोदानन्दवर्धन, बजनन्दन का चरित्र एक सम्पूर्णता का द्योतक है। उसके कोई खण्ड–भाव हो ही नहीं सकता। क्योंकि भगवान पूर्ण पुरुषोत्तम हैं।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

भगवान् श्री कृष्ण का चरित्र विश्व–चिन्तन का आदर्श–बिन्दु है। निरुक्तकार कहते हैं कि – भगइति ऐश्वर्य नाम तद्वान् भगवान इति– अर्थात् समस्त विश्व का सर्वविध ऐश्वर्य जिसके भीतर समाहित है तथा जो ज्ञान–विज्ञान, भूत–भविष्यत्–वर्तमान, सत्व–रजत्–तमस्, जड़–चेतनात्मक समूची सृष्टि का जनक है और निखिल ब्रह्माण्ड की समस्त लीलाएँ जिसके भ्रूभंगमात्र से संचालित होती हैं एवं जो केवल भक्तों की पूर्ण निष्ठा, भक्ति तथा उनके प्रेम और समर्पण से ही बँधता है। ऐसे भगवान की भक्ति में पगे रसखान कवि की प्रस्तुत पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं – नारद, शुकदेव, व्यास, शेषनाग, शिव, गणेश, सविता एवं इन्द्र आदि देवता सतत उपासना के बावजूद जिनका अन्त न पा सके, जिन्हें अपना न बना सके ऐसे सृष्टि–नियामक बृजवल्लभ को गोपी की सामान्य कन्याएँ थोड़े से छाछपर यथेच्छ नाच नचाती रहती हैं। भक्त की पुकार सुन लीला नायक कभी गोवर्धन धारण करते हैं कभी कुब्जा को सुन्दर बनाते हैं, कभी दावानल का पान करते हैं तो कभी लोह–खम्भ को चीरकर प्रकट हो भक्त की रक्षा करते हैं। गोपियों के लिए प्राणप्रिये तथा ऊद्धव और श्री दामा के लिए मित्र, नन्द–यशोदा के लिए पुत्र, रुक्मिणी के लिए पति, राधा के लिए प्रेमी सामान्यजन के लिए गोप–किशोर इन्द्र के लिए विश्वव्यापी आत्मा, देवों के लिए आनन्ददाता, स्त्रियों के लिए रति–पति तथा मुष्टिक चाणूर एवं कंस के लिए वे साक्षात् कालस्वरूप दीखते हैं। कंस की सभी में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है –

मल्लैः शैलेन्द्र कल्पः शिशुराखिल जनैः पुष्प चापोऽङ्गनाभिः .....

आदर्श कर्मयोगी विश्वमंगलरूप, सेवाधर्मव्रती, समदर्शी तथा आदर्श गृहस्थ मुरलीधर के वंशी की ध्वनि सुनकर सम्पूर्ण व्रज ही नहीं, सारा त्रैलोक्य भी मुग्ध हो जाता है इसीलिए रस खान ने कहा –

कौन ठगौरी भरी हरि आजु,
बजाई है बासुरिया रंग–भीनी।
तान सुनी जिनही तिनही
तबही तित लाज बिदा करि दीनी।।
घूमे घरी घरी नंद के द्वार।
नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।।

या ब्रजमण्डल में रसखानि।
सु कौन भटु जू लटू नहि कीनी।।

सर्वतोभावेन न केवल मधुर बल्कि जो मधुराधिप हैं – ऐसे नन्दनन्दन की लीला विश्वकल्याण की पथप्रदर्शिका है, मानव–जीवन की समग्र समस्याओं का समाधान है। अपने–अपने जीवन को सार्थक बनाने की सफल कुंजी, मोक्ष–प्राप्ति का निर्विघ्न सुगम राजमार्ग, अखण्ड तपश्चर्या से पवित्रीकृत सहृदय–हृदय की परमपूत सद्भावना एवं 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्' की संवाहिका है। वस्तुतस्तु उनके असंख्य नाम हैं, और नामानुरूप उनकी अगणित लीलाएँ हैं। जिनकी उपस्थापना में शब्दों की सामर्थ्य भी कुण्ठित हो जाती है। इसीलिए तो उपनिषत्कार कहते हैं कि –

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि भगवतलीला विशिष्टातिविशिष्ट है; क्योंकि जो उनके शत्रु जैसे दीखते हैं, उन्हें भी भगवान मुक्ति प्रदान करते हैं। वे अजातशत्रु हैं। जो मुक्ति ऋषि–मुनियों को अपने जन्म जन्मान्तरीय विकट साधना के बावजूद दुर्लभ है, वह उनका शत्रुभाव से भजन करने वालों के लिए सहज सुलभ है। मात्र नामानुकीर्तन करने वाले आजन्मपात की अजामिल तक को उन्होंने परमधाम प्रदान किया। भागवत (12/4) में महर्षि वेदव्यास का कहना है कि भगवान श्री कृष्ण चन्द्र की लीला संसार सागर में विद्यमान है, विविध दुःखों के भयावह अग्नि से जलते हुए जीव के पार जाने और शान्ति के लिए एकमेव सफल नौका है।

सुर मुनि दुर्लभ मुक्ति की विधायिका तथा मंगल रूपात्मिका भगवत–लीला का रसास्वाद जिसे मिल गया, वह सम्पूर्ण सुख–दुःख, इच्छा–अनिच्छा, कर्माकर्म एवं स्व पर की भावना से ऊपर आत्मारामम्य हो जाता है।

वह जन्म–मरण के बन्धन से सदा–सदा के लिए छूट जाता है। भागवतकार के शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि –

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममंगलम्।
कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः।

इस प्रकार गीता हो या महाभारत, भागवत हो या अन्य पुराण, वेद हो या उपनिषद् सम्पूर्ण वाङ्मय भगवत् लीला का ही शाब्दिक स्वरूप है। जिसके प्रति हृदय से समर्पित होकर कोई भी प्राणी आवागमन से मुक्त हो जाता है।

भगवल्लीमृतं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।

● ● ●

सिद्धयोग

आय–व्यय का विवरण वर्ष – 2012–13

आय		व्यय	
पिछला शेष (बैंक में जमा)	335006/–	कागज व छपाई	139209/–
नगद हाथ में	1734/–	कार्यालय खर्च	13500/–
वार्षिक शुल्क से प्राप्त	132106/–	बैंक में जमा	367406/–
सहयोग राशि प्राप्त	31964/–	नगद हाथ में	689/–
मनीआर्डर से प्राप्त	3510/–		
बैंक से प्राप्त ब्याज	15104/–		
चैक से प्राप्त	1380/–		
कुल योग	5,20,804/–	कुल योग –	5,20,804/–

सहयोग राशि दाताओं की सूची

शमशेर दहिया, करनाल(हरि.)	500/–	डी.एस. पाण्डेय, बैतूल (म.प्र.)	251/–
जसवन्त सिंह दहिया, गुढा करनाल(हरि.)	500/–	अनिल कुमार पाण्डेय, बैतूल (म.प्र.)	051/–
वीरेन्द्र पाल, गुढा करनाल(हरि.)	500/–	शिव सेवक पाण्डेय, बैतूल (म.प्र.)	500/–
कर्मवीर सिंह, गुढा करनाल(हरि.)	500/–	रेखा तिवारी, बैतूल (म.प्र.)	500/–
रामचन्द्र मलिक, बला करनाल	505/–	सुरेन्द्र पाल कोहण्ड, करनाल	555/–
समीक्षा निगुड़कर, भोपाल	501/–	रघुवीर गंगाना (हरि.)	500/–
सुदेश रानी, रानीबाग दिल्ली	5000/–	जरनेल सिंह, करनाल	500/–
जयप्रकाश बंसल – पानीपत	2100/–	दिलवर सिंह, करनाल	1100/–
अभिमन्यु कुमार सिंह, कछवा मिर्जापुर	1500/–	सुखराम पाल, करनाल	500/–
विद्यागी श्रीवास्तव, झाँसी	1100/–	डॉ. रजनीश नांगल, पंजाब	1100/–
डॉ0 रजना सिंह, गाजीपुर	1100/–	जगदीश प्रसाद गुप्ता, कालपी	1100/–
शशी प्रधान, गाजीपुर	1100/–	पी.बी. त्रिपाठी, झाँसी	1100/–
अनामिका, गाजीपुर	1100/–	सुरेन्द्र बहादुर सिंह, कछवा मिर्जापुर	4000/–
अनिरुद्ध प्रधान, गाजीपुर	1100/–		
शान्ता शर्मा अंबाला	2101/–	कुल योग –	31964/–
ओमवती शर्मा, हापुड़	500/–		
जे.पी. गुप्ता, गंगापुर सिटी	500/–		

APRIL 2013
SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री _____

_____

_____

□□□□□□

रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां रक्तां रक्तनवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम्।
गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डाम्बुजां पदमक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे।।

(देवीभागवत 12 / 6)

जो रक्त, श्वेत, पीत, नील और धवल वर्णों के श्रीमुखों से सम्पन्न हैं, तीन नेत्रों से जिनका विग्रह देदीप्यमान हो रहा है, जिन्होंने अपने रक्तवर्ण–शरीर को नूतन लाल कमलों की माला से सजा रखा है, जो अनेक मणियों से अलंकृत हैं, कमल के आसन पर विराजमान हैं, जिनके दो हाथों में कमल और कुण्डिका एवं दो हाथों में वर तथा अक्षमाला सुशोभित हैं, उन हंस की सवारी करने वाली कुमारी–अवस्था से सम्पन्न भगवती गायत्री की मैं उपासना करता हूँ।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दामोदर शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सँवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14668.
सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दामोदर शर्मा